

मोहिं गोसांई पूजत नाहीं । दरशाऊं प्रभाव यहि काहीं ॥
 अस गुनि तुलसिदासके बाहू । दुसह पीर प्रगथ्यो प्रददाहू ॥
 होतभई अति पीर तहांहीं । छूटत जान्यो निज तनुकाहीं ॥
 यतन कोटि कान्ह्यो मतिधीरा । तबहुँ न मिटी बाहुकी पीरा ॥
 तब बाहुकको रच्यो गोसांई । मिटिगै पीर स्वप्नकी नांई ॥
 भैरव पर कोप्यो हनुमाना । भैरवसों शिव वचन बखाना ॥
 देहु रामदासन दुख नाहीं । ते मोहिं प्रिय प्राणहुँते आहीं ॥
 स्वप्ने तुलसी सों शिव भाष्यो । मैं भैरवाहि मुख्य गण राष्यो ॥
 इनहुँको वंदन तुम कीजै । मोरि प्रीति अतिशय गनिलीजै ॥
 तुलसिदास तब आनंद पाई । भैरवकी वंदना बनाई ॥

दोहा—रच्यो कवित्त उदग्र अति, बाहुक चौआलीस ॥

तासु प्रभाव प्रत्यक्ष अति, अबलों आंखिन दीस ॥ २५ ॥

जो चौआलिस दिवस लागि, हनुमत मंदिर जाय ।

पाठ करै बाहुक शुचित, बैठि सनेम सोहाय ॥ २६ ॥

तासु प्रेतबाधा सकल, तनकी मनकी पीर ।

मेदिदेत मारुतसुवन, यह भापैं मतिधीर ॥ २७ ॥

एक समय तुलसी भंडारे । जुरी भेंट जन दिये अपारे ॥

चोर चोरावनके हित आये । अर्द्ध निशा निज घात लगाये ॥

जबहीं चोर चोरावन आवैं । द्वै बालक धनु शर लै धावैं ॥

यहि विधि सिगरी निशा सिरानी । चोरन उरते कुमति परानी ॥

दौर चोर तुलसीके पायन । परे आय चित्तमें अति चायन ॥

पूछ्यो को बालक प्रभु दोऊ । इतैं न आवन पावत कोऊ ॥

तुलसिदास पूछ्यो वृत्तांता । चोर कहे सिगरे ह्वै शांता ॥

धन्य धन्य कहि पुलकि गोसांई । गहे चोर पाँयन वरिआई ॥

त्रैमे शिष्य तुरंतहि चोरा । तुलसिदास उर भो दुख भोरा ॥

सम्पात धरव उंचेत इत नाही । राम लषण तार्के धनकाहीं ॥
धिक तेहिं जेहिं प्रभु परिश्रम भयऊ। अवलौं मोर कपट नहिं गयऊ
अस गुणि सम्पति दियो लुटाई । कर करवा कौपीन विहाई ॥

दोहा—काशीमें पुनि एक समय, मरचो विप्र कोउ एक ।

सती होन हित तासु तिय, बांध्यो यतन अनेक॥२८
न्हाय पहिरि पव नरियर लैकै । चली देव दरशन सुख छैकै ॥
तुलसीदास आश्रमहूं गवनी । बंध्यो चरण विप्रकी रवनी ॥
ध्यान करत तहैं रहे गोसांई । बोले वचन सहजकी नांई ॥
हो सौभाग्यवती तैं नारी । सुनि सहगामिनि गिरा उचारी॥

साषी—तुलसी आवत देखकरि, सतीनवायो शीश ।

जब तुलसी ऐसे कह्यो, अमरचूड़ आशीश ॥ १ ॥

पती हमारे चलि गये, हम ही चलनेहार ॥

तुलसी तुमरे वचन को, हो सीकवन हवाल ॥ २ ॥

सत्य करो अपनी प्रभु वानी । सती होन हित अहौं पयानी ॥
लख्यो गोसांई नयन उचारी । कि हे हती तिय सती तयारी ॥
अपने वचन सत्यके हेतू । गये जहां मृत दाहन नेतू ॥
नयन मूँदि दोउ भुजा पसारहु । जय जय सीताराम उचारहु ॥
मृतक ओर चितई जो कोई । आंधर सो विशेषिकै होई ॥
जन समाज तैसहि सब कीन्हे । सीताराम मुदित कहि दीन्हे ॥
जब सब बोले राम दोहाई । मृतकहु बोल्यो हाथ उठाई ॥

दोहा—तुलसी मरा बोलाइकै, मस्तकधारचो हाथ ॥

हम तौ कछु जानै नहीं, तुम जानौ रघुनाथ ॥२९॥

दौरि गह्यो तुलसी चरण, माच्यो जयजयशोर ॥

कोउ एक मूँद्यो नयन नहिं, भयो अंध तेहिं ठोर॥३०॥

गह्यो आय पद ताकी नारी । हरहु नाथ एक आँखि हमारी॥

एक आंखि पतिकी प्रभुदीजै । अपनो वचन सत्य करिलीजै ॥
 एवमस्तु कहिदियो, गोसांई । तैसहि भयो तुरत तोहिं ठांई ॥
 पुनि काशी महँ कौनेहु काला । गोहत्या केहुँ लगी कराला ॥
 दियो कुटुम्ब तासु तब त्यागी । आयो सो तुलसी पद लागी ॥
 कह्यो जोरि कर सुनहु उदारा । लखैं लोग नहिं वदन हमारा ॥
 तुलसिदास बोले तब वैना । राम कहे तनु पाप रहैना ॥
 हम कुटुम्ब सब देब मिलाई । राम राम तैं कहु रट लाई ॥
 तोहिं मुख राम राम रट लागी । तनुते गोहत्या द्रुत भागी ॥
 तुलसी तातु कुटुम्बन बोल्यो । मंजुल वचन सबनसों खोल्यो ॥
 राम कहत गोवध अव भाग्यो । याको वृथा सबै तुम त्याग्यो ॥
 जोहिं प्रतीति अव होय तिहारी । सो करिलेहु परीक्षा भारी ॥

दोहा—कह्यो कुटुम्बी तासु सब, जो नंदी शिव भौन ॥

याके करको खाय कछु, तौ सदेहहै कौन ॥ ३१ ॥

तब विश्वेश्वर मंदिर माहीं । गये गोसांई लै तेहिकाहीं ॥
 नंदीश्वरसों विनय सुनायो । नाम प्रभाव तुम्हीं सब गाथो ॥
 राम नामको यथा प्रभाऊ । तुम समान को जानन काऊ ॥
 राम कहत जो अव रहिजावै । तौ यहिकर प्रभु कछु न खावै ॥
 असकहिके द्विज करकृत पेरा । धरिदीन्ह्यो नंदीश्वर नेरा ॥
 दै केवार बहिर प्रभु बैठे । कौतुक लखन जुरे जन तैठे ॥
 लखे केवार खोलि जब जाई । लीन्ह्यों नंदी पेरा खाई ॥
 यक मुखमहँ प्रतीति हितराख्यो । काशी वासी जयजय भाख्यो ॥
 लिय कुटुम्ब सब ताहि मिलाई । तुलसिदास महिमा मुख गाई ॥
 एक समय पुनि तुलसीदासा । कछु दिन कियो अवधपुरवासा ॥
 एक विप्रबालक तहँ मरेऊ । तुलसी चरण आयसो गिरेऊ ॥
 लोक रीति तुलसी समुझायो । ताके मनमें कछु न आयो ॥

दोहा—लोथि डारिकै सो गयो, तुलसीदासके द्वार ।

खान पान संध्या न किय, तुलसी कियो खँभारा ॥३२॥
सुमिरन कीन्ह्यो पवनकुमारा । अहो नाथ तुम मोहिं अधारा ॥
हनूमान कह स्वप्ने आई । यहि पर जम कीन्हे जवराई ॥
पै याको हम अवशि जियैहैं । रामभक्तको शोक भिटैहैं ॥
अस कहियमपुर गयो कपीशा । यम बोल्यो पदनावत शीशा ॥
यमपुर विप्र बाल जिय नार्हीं । खोजिलेहु सिगरे पुरमार्हीं ॥
खोज्यो कपि पायो नहिं जीवा । तब यम पर करि कोपअतीवा ॥
सुमिरि राम पद महिमासिगरी । लियो लपेटि लँगूरसों नगरी ॥
बोल्यो यमसों पवनकुमारा । देहु जियाय विप्रको वारा ॥
नातो तेहि सँग यमपुर जैहै । मम प्रभु तुव सम और बनैहै ॥
तब यम भभरि कह्यो कर जोरी । भाग्य मिटावन शक्ति न मोरी ॥

श्लोक—लिखिताचित्रगुप्तेन ललाटाक्षरमालिका ।

तन्नचालयितुं शक्यमसुरैस्त्रिदशैरपि ॥ १ ॥

इतिपुराणांतरे ॥

वायुसुवन तब कह सुसकाई । यह सति रघुपति भक्तिविहाई ॥
तामैं सुनु यमराज प्रमाना । कियो सनातन वेद बखाना ॥

श्लोक—यद्वात्रालिखितं भाले तन्मृषानैव जायते ।

ऋते श्रीरामदासानां प्रेमनिर्भरचेतसाम् ॥

दोहा—तब यमराज डेरायकै, लै द्विज बालक प्रान ।

अरप्यो आय कपीशको, राख्यो अपनो थान ॥३३॥
दिय कपीश द्विजपुत्र जियाई । सकल अवधपुर बजी बधाई ॥
तुलसीदास अति आनंद पायो । तहां वसत कछु काल बितायो ॥
आयो एक वणिक पुनि कोऊ । रामदरश लालस किय सोऊ ॥
तुलसीदास सों विनय सुनायो । श्रीरघुवीर दरश चितचायो ॥

तुलसिदास तब कह मुसकाई । यह तो बात महा कठिनाई ॥
 सहजहि रामदरश नहिं होई । कोटिन जन्म जातहै खोई ॥
 वणिक कह्यो है कौन उपाई । तुलसिदास तब कह्यो बुझाई ॥
 वरछी गाड़ि भूमिमहँ देहू । तापर कूदहु तजि तनु नेहू ॥
 यहि विधि दरश होय तौ होई । और यतन कछु परै न जोई ॥
 वणिक कह्यो यह तौ न असति है । तुलसिदास कह सति सति सति है ॥
 वणिक गाड़ि वरछी महि माहीं । चढ़्यो जाय तरु कूदन काहीं ॥
 मरन भीति कूद्यो नहिं जाई । बनिया बारबार पछिताई ।

दोहा—कोउ क्षत्री तेहि पंथ है, लख्यो तमाशो जाय ।

कह्यो वणिकसों काह यह, वैश्य गयो सब गाय ॥३४॥

क्षत्री कह्यो उतरि तुम आवहु । कौन हेतु तनु वृथा गवांवहु ॥
 मोसों लेहु कछुक धन भाई । करहु जाय रोजगार बनाई ॥
 वणिक मानि क्षत्रीके वयना । लै धन तुरत गयो निज अयना ॥
 क्षत्री लियो मनहिं अनुमानी । मृषा न तुलसि दासकी वानी ॥
 तरुपर चढ़ि कूद्यो वरछीपर । उपरहि रोकि लियो तेहिं रघुवर ॥
 बजे नगर दुंदुभी अपारा । भयो सुयश सिंगरे संसारा ॥
 तामें प्रमाण गोसाईंजीकी । में लिखि देहों सोई नीकी ॥
 कौनिहुँ सिद्धि कि विन विश्वासा । विन हरिभजन न भव भयनासा ॥
 यक दिन सरयू गये नहाने । मज्जन हित जब नीर समाने ॥
 तब यक तिय विन वसन नहाती । कह्यो लाजभरि सो विलखाती ॥
 करि मम ओर पीठि यहि ठाई । ठाढ़ो रहु तोहिं रामदोहाई ॥
 तिय मज्जन करिकै घर आई । तुलसिदास सुनि रामदोहाई ॥
 रहे ठाढ़ तेहिं दिन तेहिं ठाई । शपथ बहोर वतिय विसराई ॥
 भयो शोर सिंगरे पुरमाहीं । आई सो तिय बहुरि तहाहीं ॥

दोहा—तुलसीदास सो वचन कहि, राम शपथ तुमकाहिं ।
 जाहु आपने भवनको, इतै कार्य्य कछु नाहिं ॥३६॥
 तुलसीदास जलते निकसि, तब आयो निज भौन ।
 जलचर पग पल नोचि लिय, कियो न इक पद गौन ३६
 राम शपथ यहि भांतिकी, ताहि मंदमति लोग ।
 रामद्रोहि भाषत रहैं, करिकै मृषा प्रयोग ॥ ३७ ॥

तुलसीदासकर बढ्यो प्रभाऊ । भयो विदित पुहुमी सब ठाऊ ॥
 बादशाह दिल्लीको वासी । सुनि कीरति अति आनँदरासी ॥
 निज नायकको कह्यो बोलाई । तुलसीको लाइये लेवाई ॥
 नायव चलयो बनारस आयो । तुलसीदासके पद शिरनायो ॥
 हजरत तुम्हें बोलायो साँई । चलो मेहर करिकै तेहिं ठाँई ॥
 तुलसीदास तब कियो विचारा । कौन शाहते हेतु हमारा ॥
 पै जो हम दिल्ली नहिं जैहैं । शाह अवशि दरशन हित ऐहैं ॥
 तौ जीवनको अति दुख होई । उचित परै चलिबो मोहिं जोई ॥
 तुलसीदास लै साधु समाजा । दिल्ली गये सुमिरि रघुराजा ॥
 शाह कियो सादर सत्कारा । पुनि बोल्यो अपने दरबारा ॥
 तुमहिं सुन्योसाहेबाहिं मिलापी । अजमत देहु देखाय प्रतापी ॥
 तुलसी कह्यो राम हम जानैं । दूसर साहेब और न मानैं ॥

दोहा—अजमत देखन हेतु तहँ, कीन्ह्यो हठ शठ शाह ।

तुलसीदास अजमत करन, कियो न मनमें चाह ३८ ॥
 शाह सकोप कह्यो तब वानी । तू खिलाफ अजमत अभिमानी ॥
 कारागार कैद यहिकीजै । राम करत का सो लखिलीजै ॥
 सुनत शाह शासन मजबूता । कारागार गये लै दूता ॥
 तुलसीदास तब कियो विचारा । मोर सहायक पवनकुमारा ॥
 सुमिर्यो पद रचिकै हनुमाना । सो पद श्रोता सुनहु सुजाना ॥

पद-ऐसो तोहिं न बूझिये हनुमान हठीले ।

हांक सुनत दशकंधके भये बंधन ठीले ॥

तुलसिदास यह पद राचि गायो । तब हनुमत उर अमरप आयो ॥
होत भोर दिल्लीपुर माहीं । कोटिन मर्कट विकट देखाहीं ॥
कोट कँगूरन और हवेली । कलसा दियो अनेकन ठेली ॥
शाखामृग यक यक घर माहीं । प्रविशत लाखन तुरत देखाहीं ॥
लाल किला मधि शाह मकाना । तहँ बांदर प्रविशे सहस्राना ॥
तोपन तुपकन यद्यपि मारा । तदपि कीश नहिं हटे हजार ॥
घुसे कीश बहु शाह जनाने । पकरि बेगमनको अनखाने ॥

दोहा-फारि वसन पटहीन किय, चीथि चीथि सब अंग ।

हाहाकार मचायदिय, रंगे कोपके रंग ॥ ३९ ॥

रहैं जौन दिल्लीके वासी । भये सकल ते जीव निरासी ॥
लेखि दुर्दशा शाह बबराना । सकल वजीरनको द्रुत आना ॥
शासन दीन्ह्यो करहु विचारा । केहि हित माच्यो जुलुमअपारा ॥
हाफिज वृद्ध रह्यो तहँ एका । सो कह कीन्ह्यो अति अविवेका ॥
यक फकीरको कैद करायो । सो अपनी अजमत दरशायो ॥
करत शाहके यही विचारा । दिल्लीमाच्यो हाहाकारा ॥
यक यक पुरुष नारि पर कीशा । लाखन लपटिगये गहि शीशा ॥
भागीं बेगम बिना सुथनिया । कहत खोदाय न पगपैजनिया ॥
नोचहिं नारिन केशन कीशा । भागत गिरीं फूटिगे शीशा ॥
मातु सुता पितु सुत तजि भागे । कोहु कोहु संग न लिय भय पागे ॥
दिल्ली प्रलय होति सों दीसै । हल्ला कियो महल्ला कीसै ॥
कारागार जाय द्रुत शाहा । गिरचो तुरत तुलसी पद माहा ॥

दोहा-विनय कियो करजोरिकै, अजमत लीन्ह्यो देखि ।

अब वानरन समेटिये, प्रलय होति सी लेखि ॥ ४० ॥

तुलसीदास कह अजमत देखौ । रामचरित्र सकल जिय लेखौ॥
जो चाहौ आपनी भलाई । तौ फेरहु पुर रामदोहाई ॥
यह दिछी भो हनुमत थाना । वसहु जाय रचि द्वितिय मकाना
शाह मानि शासन शिरनाई । दिछी फेरयो रामदोहाई ॥
बंदर बंद भये जेहि कालै । तुलसीको लायो निज आलै ॥
कियो गोसाईको सत्कारा । दिछी दूसरि रच्यो भुवारा ॥
रामघाट रचि यमुना माहीं । दिछी अरपिसु तुलसी काहीं॥
वस्यो शुचैत चेत बादशाह तहाँ । तुलसीको राख्यो तेहि पुर महँ ।
सुन्यो सूर कीरति तेहिं भांती । दरशन अभिलाषा अधिकाती॥
पठै बुद्धिमानन ब्रजकाहीं । आन्यो सूरदास पुर माहीं ॥
तुलसी सूरसमागम भयऊ । राम कृष्ण मय पुर ह्वैगयऊ ॥
दोऊ गये शाह दरबारा । बादशाह किय अति सतकारा॥

दोहा—शाह कह्यो तब सूरसों, दीजै चरित देखाय ।

सूर कह्यो तुलसी चरित, लखि नहिं गये अघाय॥४१॥
बेटी तुव जो वसै जनाने । तासु चरित सुनिये दोउ काने॥
कृष्ण रासकी सखी सुहाई । कौनेहु पाप भवन तुव आई ॥
ताहि पठावहु ब्रजै तुरंता । रासकरत जहँ राधाकंता ॥
जो परतीति होय नहिं तेरे । तौ मानिये वैन अस मेरे ॥
तासु वाम जंघा तिल होई । मूरति श्याम कपोलहि जोई॥
शाह सुनत उठि गयो जनाने । बेटीको सो वचन बखाने ॥
सुनतहि सुता सूर ठिग आई । दै तलमुख तनु दियो विहाई॥
तासु जंघ तिल लख्यो अमोला । श्याम स्वरूपहु लख्यो कपोला॥
अचरज गुणि पूंछ्यो तब सूरै । हेतु बखानि हरहु भ्रम पूरै ॥
सूर कह्यो यह सखी रासकी । मान कियो पिय मिलन आसकी॥
मैंही गयो मनावन याको । मान्यो नहिं मनायकै थाको ॥

तब मैं कह्यो वियोगिनि हैहै । सोउ कह तहूं वियोगहि पैहै ॥

दोहा—आयगये तहैं मिलन हित, तुरतहि मदन गोपाल ।

कर गहि जंवा धरि छरी, चूमि कपोल विशाल ॥४२॥

लियो लेवाय मनाय पियाको । जान्यो सब वृत्तांत तहांको ॥

मोहिं कह्यो तैं प्रगट जगतमें । तारैं जनन विराजि भगतमें ॥

सखी होयगी शाह कुमारी । तोहिं मिलिहै तब तनु तजिडारी ॥

सोय अमरषवशमोहितलमारचो । तनुतजियदुपतिरास सिधारचो

छरी चिह्न जंवा तिल सोई । चुम्बन चिह्न कपोलहि जोई ॥

शाह सत्य गुणि अचरज त्यागा । बारहिबार सूर पग लागा ॥

रहे बहुत दिन सूर गोसांई । करि सत्संग न मोद अघाई ॥

यक दिन दोउ बजार महँ बैठे । करि सत्संग मोदरस पैठे ॥

शाह मत्त मातंग महाना । आवत चलो दुहुँन दरशाना ॥

लोगन कह्यो पराव तुरंता । नातो करन चहत गज अंता ॥

सूर कह्यो मैं जाहुँ गोसांई । मैं रहिसकों न अव यहि ठाई ॥

मेरो नंदलाल अतिबालक । किमि हैहै दुरधर गज वालक ॥

तू बैठे तौ बैठ भलाई । धनुधर तेरो नाथ गोसांई ॥

दोहा—भगे सूर अस कहि तहां, लीन्हें अंक गोपाल ।

तुलसिदास मुसकायकै, बैठ सुमिरि रघुलाल ॥४३॥

धायो तुलसी सन्मुख नागा । आकस्मात शीश शर लागा ॥

मरचो हस्थि करि घोर चिकारा । भो वृत्तांत विदित संसारा ॥

तुलसी सूर समागम करिकै । काशी आवतभे मुद भरिकै ॥

एक समय नाभाजू ज्ञानी । जिन यह भक्तमाल निरमानी ॥

ते सब संतन नेउता दीन्ह्यो । सिगरे संत पयानो कीन्ह्यो ॥

तुलसिदास को न्योतो आयो । तब मनमें विचार अस लायो ॥

पंगतिमें कच्चो पकवाना । द्विजको खैबो उचित न जाना ॥

यह विचारि कर तहां न गयऊ । पवनसुवन तासों कहि दयऊ ॥
भक्तराज नाभाको जानो । तुरतहि तहँको करो पयानो ॥
हनुमत शासन सुनत गोसांई । चले तुरत भिक्षुककी नाई ॥
नगर ओढछे ढिग तब गयऊ । कौतुक तहाँ माचि यह रहेऊ ॥
तहँको इंद्रजीत जो राजा । सो जोरचो बहु कविन समाजा ॥

दोहा—कवि समाज शिरताज किय, श्रीकवि केशवदास ।

रामचंद्रिका जो विमल, कीन्ह्यो जगत प्रकास ॥४४॥
कवि मंडली विलोकि नरेशा । दीन्ह्यो विप्रन नवल निदेशा ॥
यह सब कविमंडली सदाहीं । रहै कौन विधि मम ढिगमाहीं ॥
मंत्रशास्त्रवित कह असि वानी । प्रेतयज्ञ कीजै विधि ठानी ॥
यहि विधिते यह कविन समाजा । रहै सहस वर्षहु लगि राजा ॥
इंद्रजीत तब अति सुख पायो । प्रेतयज्ञ विधिसहित करायो ॥
सो कवि मंडल युत नरनाथा । भये प्रेत तनु तजियक साथी ॥
रामचंद्रिका केशव कीन्ह्यो । पूरण भई न तनु तजि दीन्ह्यो ॥
यह वृत्तांत सकल कोउ पाई । तुलसीदासको दियो सुनाई ॥
सोइ कवि केशव वट तरुमाहीं । अबलों करत पुकार सदाहीं ॥
रामचंद्रिकाको ले जाई । ल्यावै तुलसी सों शोधवाई ॥
यह सुनि तुलसीदास तहँ गयऊ । केशव कहत पुकारत भयऊ ॥
केशव तरुते उतरि तुरंता । तुलसी पद पकरचो हरषंता ॥

दोहा—नाथ उधारो मोहिं अब, ग्रंथ सुधारो सोय ॥

नहिंवांच्यो ममकोउकुमति, हांच्योबहुविधिरोय ॥४५॥
तुलसी कह्यो विहँसि असि वानी । रामचंद्रिका पढु सुखखानी ॥
केशव रामचंद्रिका पढ़ेऊ । तुलसी सुनि शोधत मुद बढेऊ ॥
रामचंद्रिका पूरी जबहीं । केशव तच्यो जयाति कहि तवहीं ॥
नाभा निकट गोसांई गवने । पंगति समय पहुंचि दुख शमने ॥

लखि नाभा कछु कह्यो न वानी।लखन रीति तेहि सुमति लोभानी
तुलसी बैठे पंगति छोरा।परी पातरी नीचे ठोरा ॥
साधु उपानत पातरि नीचे।धरि कीन्ह्यो सम आते सुख साँचे॥
नाभा निरखि भाव अस ताको।मिल्यो जाय कर गहि सुख छाको॥
ताहि मध्य पंगति बैठायो।बार बार चरणन शिरनायो ॥
कछु दिन कीन्ह्यो तहां निवासा।करिसत्संगहि लह्यो हुलासा ॥
नाभातासु विमल मति हेरा।भक्तमालमहँ कियो सुमेरा ॥
पुनिब्रजमंडल यात्राकरने।तुलसिदास गवन्यो सुखभरने ॥

दोहा—नाभाजू छप्प लिख्यो भक्तमालमें जौन ॥

मैं सो इत लिखिदेत हौं, श्रोता समुझो तौन ॥ ४६ ॥

छप्पय—त्रेता काव्य निबंध कियो शत कोटि रमायण ॥

यक अक्षर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायण ॥

अब भक्तन सुखदेन बहुरि लीला विस्तारी ॥

रामचरण रसमत्त रहत अहनिशि व्रतधारी ॥

संसार अपारके पारको सुगम रूपनौका लयो ॥

कलिकुटिलजीवनिस्तारहितवाल्मीकितुलसी भयो ॥

दोहा—तुलसिदास यात्रा करी, ब्रज चौरासी कोश ॥

राम कृष्ण वपु भेद बिन,भरिआनँद उर कोश ॥४७॥

बहुरि जबै वृंदावन आये।घाट घाट मज्जन करि भाये ॥

सब मंदिरन दरश करि लीन्ह्यो।ज्ञान गूदरी डेरा कीन्ह्यो ॥

परशुराम तहँ रह्यो महंता।कृष्ण उपासक भाव करंता ॥

लख्यो गोसाँई की सब रीती।बढ़ी करन सत्संगहि प्रीती ॥

तुलसिदासको करि सत्संगा।नव नव बढ़त प्रेमरसरंगा ॥

परशुरामके मंदिर माहीं।कृष्णरूप श्रीनाथ सोहाहीं ॥

वंशी लकुट काछनी काछे।मुकुट माथ माला उर आछे ॥

सोहति मूरति ललित त्रिभंगी । हरणहार हिय राधा संगी ॥
 यक दिन तहँ सब दिनकी नाई । दरशहेतु चलिगये गोसाँई ॥
 परशुराम तहँ रह्यो महंता । तासु परीक्षा चह्यो करंता ॥
 तुलसी करन दंडवत लागे । तब महंत बोल्यो अनुरागे ॥
 मेरे वचन कछुक सुनिलेहू । फेरि द्वार दंडवत करेहू ॥

दोहा—अपने अपने इष्टको, नवनकरैं सबकोय ॥

इष्टविहीनपरशुरामजी, नवै सो मूरख होय ॥ ४८ ॥

परशुरामके वचन सुनि, मानत हिये हुलास ॥

सीतारमण सँभारिकै, बोल्यो तुलसीदास ॥ ४९ ॥

कहा कहौ छवि आजुकी, भले बनेहो नाथ ॥

तुलसी मस्तक तब नवै, धरो धनुष शर हाथ ॥ ५० ॥

मुरली लकुट दुरायकै, धन्यो धनुष शर हाथ ॥

तुलसी लखि रुचि दासकी, नाथ भये रघुनाथ ॥ ५१ ॥

यह प्रत्यक्ष देख्यो संसारा । वृंदावन माच्यो जयकारा ॥

परशुराम तुलसी पद गहेऊ । धन्य धन्य कहि आनंद लहेऊ ॥

यकदिन ज्ञानगूदरी माहीं । होती हरिकी कथा सदाहीं ॥

गये गोसाँई श्रवण उमाहा । निरखे संत महंतन काहा ॥

कोउ गद्दीमहँ बैठ महंता । कोउ उच्चासन महँ विलसंता ॥

गद्दी महँ बैठावन लागे । भूमहँ बैठिगये अनुरागे ॥

कह्यो गोसाँई सबन सुनाई । कथाश्रवणके दोष गनाई ॥

कथा सुनत वीरा जे खाहीं । ते मल भक्षत नरकन माहीं ॥

कथा सुनत बैठै उच्चासन । ते अर्जुन तरु होत पाप सन ॥

कथा सुनहिं जे विना प्रणामा । ते विष वृक्ष होत अव धामा ॥

कथा सुनत जे सोवत जानी । ते अजगर होते अभिमानी ॥

जे वाचक सम आसन बैठैं । ते गुरतल्प पाप फल पैठैं ॥

दोहा—जे निंदैं यदुपाति कथा, अचहरनी मनहारि ।

बे शत जन्म प्रयंत लागि, श्वान होत दुखकारि॥५२॥
 कथा होत जे करें विवादा । ते खर सरठहोत मरयादा ॥
 जे हरिकथा सुनत शठ नाहीं । होत नरक लहि कोलव नाहीं॥
 कथा विघ्न करते जे द्रोही । नरक भोगि पुर शूकर होही ॥
 ये दश दौष तुरंत विहाई । श्रीहरि कथा सुनहु सब भाई॥
 सुनिकै तुलसिदासके वयना । भरि आये जल प्रेमिन नयना॥
 तुंगासन सब दियो विहाई । बैठे भूमि कथा शिरनाई ॥
 ह्वै कथा समापत जवहीं । बोल्यो संत एक अस तवहीं ॥
 षोडशकला कृष्ण सुखसारा । द्वादश कला राम अवतारा ॥
 षोडशतजि द्वादश कसभजहू । समाधान करु नहिं वरब्रजहू ॥
 यहसुनि तुलसिदाससुख छाके । भये मिलनहारे वसुधाके ॥
 रही दंड द्वैल गि सुधि नाहीं । सींचे संत सालिल तिन काहीं॥
 भई खबरि जब उठे गोसांई । पूछे संतभेद वरिआई ॥

दोहा—तुलसिदास बोल्यो वचन, यदापि कहव नहिं योग ।

तद्यपि कहहुँ प्रसंग वश, सुनहु भेद सब लोग॥५३॥
 रामहि जान्यो मैल गि आजू । अति कृपालु कोशलमहराजू॥
 तुम तौ बारहि कला बताये । ईश्वरको अति भाव दृढ़ाये ॥
 महाराज पुनि ईश्वर रामा । अब किमि तजौं तासुमैं नामा॥
 यह सुनि जानि अनन्य उपासी । गहे चरण सब संत हुलासी ॥
 यहि विधि करत विविध सत्संगा । तुलसी विपिन बसे रतिरंगा ॥
 पुनि कछु काल माहँ चलि काशी । तुलसिदास आये सुखराशी ॥
 विनयपात्रिका जौन बनायो । ताको मंदिर मध्यधरायो ॥
 विनय कियो सन्मुख करजोरी । सत्य होय विनती जो मोसी ॥
 तौ यहि माहँ सही परिजावे । मोर दुसह दुख द्रुत मिटि जावे॥

अस कहि कीन्ह्यो बंद केंवारा । गयो बहुरि जब भो भिनसारा॥
तुलसी पुस्तक गहि जब हेरी । मिली सही रघुपति कर केरी॥
विनय माहँ तब यह पद कीन्ह्यो । सो मैं इत ने तकलिखि दीन्ह्यो॥

पद—तुलसी अनाथकी परी रघुनाथ हाथ सही है ॥ १ ॥

दोहा—पुनि अति दुस्तर काल लखि, रामधामको जान ।

तुलसीदास विचार किय, बोल्यो सबन सुजान ॥६४॥

सहि न जात रघुपति विरह, जान चहौं हरिधाम ॥

यह सुनिकै अति व्यथित भे, सकल संत मति धाम ॥६५॥

तिनहिं दियो उपदेशमम, ग्रंथ वेद मरयादि ॥

रामायण गीतावली, विनयपत्रिका आदि ॥६६॥

तिनहि सुनहु समुझहु सुरुचि, चलहु ग्रंथ अनुसार ॥

अंत समय हठि मिलहिंगे, दशरथराजकुमार ॥६७॥

अस कहि सहजहि आयगे, असी वरुणके तीर ॥

नयन मूँदि तनु अचल किय, भइ संतनकी भीर ॥६८॥

बजे नगारे गगनमे, देखो परो विभाश ॥

दामिनि सों चहुँ ओरमें, चमक्यो चपल प्रकाश ॥६९॥

संवत सोरहसै असी, असी वरुणके तीर ॥

सावन शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥ ६० ॥

भवसागरमें नाव सम, विरचि ग्रंथ मतिधीर ॥

चढ़ि विमान गवनत भयो, जहँ निवसत रघुवीर ॥६१॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेषष्ठितमोऽध्यायः ६० ॥

अथ रामदासकी कथा ॥

दोहा—रामदासको यह सुनहु, अति विचित्र इतिहास ।

हीराकोरक ग्राम यक, रह्यो द्वारका पास ॥ १ ॥

सात कोश नगरी ते रहेऊ । रामदास तहँ वासहि गहेऊ ॥
 व्रत एकादशि जागन हेतू । जाय द्वारका कृष्ण निकेतू ॥
 विधि बहु काल बीति बहु गयऊ । रामदास बूढ़ो अस भयऊ ॥
 स्वप्ने हरि भाख्यो करि नेहू । बैठे करहु जागरण गेहू ॥
 तबहूँ रामदास नहिँ मान्यो । स्वप्नेमें पुनि नाथ बखान्यो ॥
 अब हम रहिहैं भवन तुम्हारे । लाय शकट लेचलहु उदारे ॥
 रामदास हरिवासर काहीं । शकट सहित गो मंदिर माहीं ॥
 अर्द्ध निशा खिरकी खुलि गयऊ । लै मूरति शकटहि धरि दयऊ ॥
 लै प्रभु रामदास द्रुत भागे । भोर भये पंडा सब जागे ॥
 जान्यो रामदास किय चोरी । चढ़े तुरंग चले सब दोरी ॥
 धावत आवत देखि सवारा । रामदास ह्वेगे भय भारा ॥
 वापी माहिँ फेंकि प्रभुकाहीं । भाग्यो भवन और सुधि नाहीं ॥

दोहा—रामदासको चोर गुणि, नेजा हने सवार ।

अपने तनुमें घाव लिय, श्रीवसुदेवकुमार ॥२॥

पंडा बहुरि बावली आये । रुधिर भरी लखिकै भय पाये ॥
 मूरति ऐंचि धरन तहँ कीन्ह्यो । स्वप्ने महँ प्रभु तेहि कहिँ दीन्ह्यो ॥
 हम अब रामदास गृह रहिहैं । अबते तुम्हरो अन्न न खहिहैं ॥
 विजय मूर्ति लीजै पधराई । चलिहै पूजा भोग सदाई ॥
 मम मूरति भरि तौलि सुहेमा । लेहु जाहु घर चहुहु जो क्षेमा ॥
 पंडा मान्यो नाथ रजाई । कह्यो सोन प्रभु देहु मँगाई ॥
 रामदास सों कह प्रभु वानी । धरि दीजै तियकी नथ आनी ॥
 रामदास नथ लै धरि दीन्ह्यो । पंडा मूरति तोलन कीन्ह्यो ॥
 मूरति पलरा ऊरध भयऊ । नथको पलरा महि धरि गयऊ ॥
 रोवत पंडा निज घर आये । रामदास घर प्रभु पधराये ॥
 अबलों सो प्रत्यक्ष जगमाहीं । श्रीरणछोड़ विराजतहाँहीं ॥

विजय मूर्ति पंडा पधराये । अबलों तहँ सो नाथ सोहाये ॥

दोहा—रामदासकी यह कथा, मैं वरण्यो संक्षेप ।

यामें कछू न जानिये, हरिजन चरित प्रलेप ॥ ३ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

एकषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अथ आशकर्णकी कथा ॥

दोहा—आशकर्णनरनाहको, अब सुनिये आख्यान ।

बड़ो संतसेवी रह्यो, बड़ो भूप मतिवान ॥ १ ॥

नेम रहै भूपतिको ऐसो । करै संत दरशन रह जैसो ॥

लीन्हे विना संत पद नीरा । करै प्रमाण भूप मतिधीरा ॥

एक समय कहूँ रहे विदेशू । वर्षा भई भूरि तेहिं देशू ॥

जहँ तहँ गई सैन्य वश वर्षा । रह्यो अकेल भूप हत हर्षा ॥

लगी प्यास भूपति कहँ भारी । लह्यो तहां न संत पद वारी ॥

तृषा विवश भूपति गिरि गयऊ।विन चरणोदक जल नाहिं लयऊ॥

तब हरि साधुरूप धरि आये । दै चरणोदक जलहि पियाये ॥

भूप उठ्यो जब कियो सँभारा । तौन साधुको कहूँ न निहारा ॥

तब भूपति जान्यो प्रभु काहीं । आयो करि गलानि घर माहीं ॥

भूपति सकल विभूति विहाई । लियो विराग सुमिरि यदुराई॥

वस्यो विपिन तजि संसृति संगी । रोज रँग्यो रामहिंके रंगा ॥

तजि शरीर कछु दिन महँ भूपा । राम धामको गयो अनूपा ॥

दोहा—आशकर्ण इतिहास बहु, मैं नहिं कियो बखान ।

यहि विधि औरहु चरित सब,लीजै करि अनुमान॥२॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

अथ नरवाहन राजाकी कथा ॥

दोहा—नरवाहन राजा चरित, सुनहु सुमति चितलाय ।

हित हरिवंश सुशिष्य सो, रह्यो प्रेम रस छाये ॥ १ ॥

रह्यो संत सेवी नरवाहा । अनै निज घर संत उछाहा ॥
जस तसकै धन जोरि अनंता । भोजन करवावै बहु संता ॥
यक दिन लूटि लियो यक शाहूपाय अमित धन सहित उछाहा ॥
बहुत संत भोजन करवायो । तौन साहुको कैद करायो ॥
भयो साहु अति दुखी तहाँहीं । बहुत दिवस बीते तेहि काहीं ॥
यक दिन यक भूपतिकी चेरी । लागी दया साहु जब हेरी ॥
पूछ्यो साहुहि सो सब गायो । तब चेरी भोजन करवायो ॥
साहुहि दियो उपाय बताई । भोर कह्यो तुम अस गोहराई ॥
मैं हरिवंश शिष्य हौं राजा । राधावल्लभ दास दराजा ॥
अस कहि गई भवन सो चेरी । साहु जगत गई निशावनेरी ॥
भोर भये ऊंचे गोहरायो । हित हरिवंशहि नाम सुनायो ॥
राधारमण उपासक भाष्यो । भूपति सुनतमिलन अभिलाष्यो ॥

दोहा—वेरी दियो कटाय द्रुत, दियो लूट मैगवाय ।

धन दै अति सत्कार करि, दीन्ह्यो घरहि पठाय ॥ २ ॥

साहु आय वृंदावनै, हित हरिवंश समीप ।

शिष्य भयो वर्णन कियो, नरवाहनै महीप ॥ ३ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्ल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेत्रिप

ष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

अथचतुर्भुजदासकी कथा ॥

दोहा—कहूं चतुर्भुज दासको, यह अनुपम परबंध ।

श्रोता सुनहु सुजान सब, जानि कृष्ण सम्बंध ॥ १ ॥

रह्यो शिष्य हरिवंशको, भजन करै दिन राति ।
 राधारमण उपासना, प्रेम मग्न सब भांति ॥ २ ॥
 भक्त चरण रज शिर धरै, करै सदा सत्संग ।
 रहैं भक्त येते सदा, दास चतुर्भुज संग ॥ ३ ॥

कवित्त—वर्द्धमान गंगलजी नारायण भट्ट सीवा त्यों आधारजी
 आशाधर देवराजहै॥ कठि हरियादास सोभूराम ऊदाराम रामदास
 विमलानंदजी रामराजहै ॥ श्यामदास सीहादास दलूदास पद्म-
 दास मनोरथ जा रणदास चाचाराम भ्राजहै॥ तैसहीं गुरु सवाई
 चांदनदास नापादास लक्ष्मण नफरदास सूर्यदास छाजहै॥ १॥
 कुंभदास खेमदास वैरागी भावनदास विरही भरत हरकेशजी
 नफरदास ॥ लुटेरादास हरि अयोध्यादास चक्रपाणि त्यों त्रि-
 लोकदास पुषरदीराम विजुलीदास ॥ उद्धवदास सोमदास भीम-
 दास सोमनाथ विकोदास विशाखाजी गणेश त्यों मुकुंददास ॥
 त्रिविक्रमजी रघुदास वाल्मीकि जगादास झांझूराम हरिभूराम
 हरिदास वृद्ध व्यास ॥ २ ॥ लाखाराम छीतदास कपूरदास दे-
 वानंद नरहरिजी मुकुंददास हरिदास संतराम ॥ नंददास वि-
 ण्णुदास छीतमदास द्वारकादास माधोदास माडदास रूपादास
 अभिराम॥ दामोदरदास नरहरि भगवानदास बालदास कान्हदास
 केशवदास हतकाम॥ प्रागत्यो गोपालदास लोहंगत्यो केशवजी
 हरिनाथ भीमदास बालकृष्ण मतिधाम ॥ ३ ॥

दोहा—ब्रह्मदास विद्यापतिहुँ, तैसहि भरत मुकुंद ।

दास बहोरन चतुरपुनि, दास गोविंद गोविंद ॥ ४ ॥

तथा विहारीदास पुनि, गंगादास दयाल ।

लालदास भीषमपरम, येते भक्त विशाल ॥ ५ ॥

हरि पद प्रेम मग्न सब संता । दास चतुर्भुज संग वसंता ॥

संत मंडली संग सोहाये । कवहुँ गोडवानै प्रभु आये ॥
 तहँ जन मनुज मारि बलि देहीं । वाम उपासक प्रेत सनेही ॥
 इनको परचो जाय जब डेरा । बलि हित लैगे सुत द्विजकेरा ॥
 तासु मातु रोवत अति धाई । गिरी चतुर्भुज पद बिलखाई ॥
 बलि हित मोर पुत्र लेजाहीं । त्राहि त्राहि वरजौ इनकाहीं ॥
 ते शठ सकल बजावत वाजे । लै गवने द्विजसुत बलि काजे ॥
 देखि चतुर्भुज दाया आई । कह्यो सोच मति करु तैं माई ॥
 चले आप लै संत समाजा । गे मंदिरमहँ वारण काजा ॥
 कह्यो मोहिं बलि तुम दैदेहू । भूसुर सुवन पठावहु गेहू ॥
 ते खल संत वचन नहिं माने । बालक को बलि देन तुराने ॥
 तबहिं संतमंडल लै साथी । गह्यो आय देवीको हाथी ॥

दोहा—दास चतुर्भुज तेजको, सहि न सकी सो देवि ।

उचटि शिला बाहिर परी, मनहुँ पषानरकेवि ॥ ६ ॥
 जे बलि देन हेतु शिशु लाये । ते सब गिरे मूर्च्छि भय पाये ॥
 देवी कन्या वपु धरि आई । दास चतुर्भुज पद शिरनाई ॥
 दास चतुर्भुज दिय गलमाला । ऊर्ध्वपुंड्र दै भाल विशाला ॥
 देवीको दीन्ह्यो उपदेशा । रहैं दुष्ट अब नहिं यहि देशा ॥
 जो खलभूष भाजि घर आयो । ताको देवी स्वप्न देखायो ॥
 शिष्य चतुर्भुजके सब होहू । नातो में हनिहौं करि कोहू ॥
 राजा प्रजा भोर उठि आये । दास चतुर्भुज पद शिरनाये ॥
 कीन्ह्यो शिष्य चतुर्भुजदासा । भयो राज्य भर भक्ति प्रकाशा ॥
 हरी कथा एक दिन कहूँ होती । श्रोता सुनहिं भक्ति रस सोती ॥
 एक साहु धन चोर चोराये । दौरे भट तब चोर पराये ॥
 बचत न जानि चोर भय पाई । कथा समाजहि रह्यो लुकाई ॥
 कथा कही यह तहां पुराना । मंत्रहि लेत जन्म भो आना ॥

दोहा—यह सुनि चोर तुरंतही, मुद्रा दियो पचास ।

भयो शिष्य कंठी लियो, तिलकहु दिय सहलास ॥ ७ ॥
पाछे साहु सिपाही आये । चोर चोर कहि ताहि बताये ॥
चोर कह्यो मैं अहौं न चोरा । ह्वैगो तुम्हें सबनको भोरा ॥
कह्यो सिपाही अबहिं चोराई । इतै भागि अब कह शिरनाई ॥
चोर कह्यो तब करि वरजोरी । जो यहि जन्म कियो मैं चोरी ॥
तो गोला दै मैं जरिजाऊं । तब यह परचो भूप वरन्याऊं ॥
राजा लियो चोरसों गोला । गोला देत चोर अस बोला ॥
जो यहि जन्म कियो मैं चोरी । दहै दहन तौ मोरि गदोरी ॥
अस कहि सो गोला दै सूझ्यो । साहुसिपाही सों द्रुत बूझ्यो ॥
वृथा साहुको चोर बनायो । अस कहि तिनको कैद करायो ॥
यह देखहु सत्संग प्रभाऊ । तुरत चोरको साहु बनाऊ ॥
फलीभूत होतो विश्वासा तहँ अस तुलसीदास प्रकाशा ॥
कौनिहुँ सिद्धि कि विन विश्वासा ॥ विन हरिभजनकि भवभय नाशा

दोहा—अपने हाथन दै हथा, तिय पूजहिं लखि भीति ।

सफल फलै मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीति ॥ ८ ॥
नृपति सिपाहिन पै अनखाई । कह्यो अहै यह मम गुरुभाई ॥
ताको चाह्यो चोर बनावन । ताते लायक सूरी पावन ॥
तब सो चोर कह्यो अस रोई । शूरी नाथ इन्हें नहिं होई ॥
सही साहु सम्पति मैं चोरचो । अस कहि सिगरी द्रव्य बहोरचो ॥
यह जानहु सब संत प्रभाऊ । रह्यो न मोर बचव जग काऊ ॥
संत प्रभाव देखि सो राजा । तजि जग मिलिगो संत समाजा ॥
कछु दिन तहां चतुर्भुज दासा । संत सहित किय सुखित निवासा ॥
गवने तहँते माँगि विदाई । कछुक दूरि आये हरिध्याई ॥
अधपक चना रहे यक खेतू । संत उखारचो भोजन हेतू ॥

दौरि रक्षकन लियो छोड़ाई । गारी दीन्हें भीति देखाई ॥
 बहुरि खेत निज पेखत भयऊ । ढेला भरि खेतहि रहिगयऊ ॥
 गहे चतुर्भुज दासहि चरणा । तब प्रसन्नहै प्रभु अस वरणा ॥

दोहा—करहु संत सेवन सदा, होई नहिं कछु हानि ।

लखे जाय खेती निजै, प्रथमहुँते अधिकानि ॥ ९ ॥

आयचतुर्भुजदास ढिग, भये शिष्य लै मंत्र ।

किये संत सेवन सकल, रहे न जग परतंत्र ॥ १० ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्ल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धचतुः

षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

अथ अंगदसिंहकी कथा ॥

दोहा—कहाँ विचित्र चरित्र मैं, सुनिये संत उदार ।

कीन्ह्यो अंगद सिंह ज्यों, जगमे राजकुमार ॥ १ ॥

नाभाकीछप्पय—नगअमोल यक आहि ताहिको भूपतियांचै॥

साम दाम बहु करै दासनाहिन मनकांचै ॥

एक समय शंकट में परि पानी महुँ डारच्यो॥

प्रभू तिहारीवस्तु वदनते नाम उचारच्यो ॥

पांच दोह शतकोशते, हरि हीरालै उर धरच्यो

अभिलाषभक्तअंगदकोपुरुषोत्तमपूरणकरच्यो॥

दोहा—रह्यो सैनगढ़ एक कहूँ, तहँको अंगद वासि ।

दीन सलाह सुनाम जेहि, तहँको भूप हुलासि ॥ २ ॥

अंगदसिंह रहे नृप काका । रही दुहुँनकी प्रीति पताका ॥

अंगद रह्यो विषय आधीना । तासु नारि हरिभक्त प्रवीना ॥

यक दिन तियके गुरु घर आयो सोसत्कारच्यो अतिचितचाये॥

॥ गुरु चेली यक दिन एकांता । बैठ रहे वर्णत वेदांता ॥

अंगद आय गयो तेहिं काला । लखियकांत किय कोपकराला ।
गुरुविमनस है भवनाहिं गयऊ । तिय कीन्ह्यो व्रत अंबु नलयऊ ॥
अंगद निशिमहँ जाय मनायो । तब तियपतिकहँ शपथकरायो ॥
पद परि जो गुरु ल्याउ मनाई । करहु साधु सेवनहु सदाई ॥
तब राखिहँ कंत हम प्राणा । नहिं पैहौ मम अयश निदाना ॥
अंगदसिंह शपथ करि दीन्ह्यो । संतचरण सेवन सुख भीन्यो ॥
सेवत संत भई मति विमला । छूटी विषय वासना सकला ॥
बढ़ी कृष्ण दरशन अभिलाषा । यथा तृषित जल चहै वैशाषा ॥

दोहा—भूप सलाह सुदीन पुर, चढ़्यो शाह यक काल ।

भेज्यो सूबै सैन्य युत, तब बोल्यो महिपाल ॥ ३ ॥

अंगद तुही जाहु रण काहीं । अंगद चल्यो शंक कछु नाहीं ॥
कीन्ह्यो समर वीर परिपाटी । लीन्ह्यो सूबा की शिर काटी ॥
तेहि टोपी महँ द्विति गंभीरा । लागे रहैं एक शत हीरा ॥
बड़ो जवाहिर एक अमोला । अंगद ताहिं तुरंतहि खोला ॥
कह्यो मनहिमन हेजगदीशा । यह हीरा योगहि तुव शीशा ॥
अस कहि सो हीरा घर राख्यो । और सबहिं भूपहिं दौराख्यो ॥
कछु दिनमें भूपति सुधि पाई । मांगन लग्यो पदिक वरियाई ॥
सो हीरा अंगद नहिं दीन्ह्यो । तब भूपति अमरष अतिकीन्ह्यो ॥
अंगद प्रिय भगिनी कहँ बोली । कह्यो सकल आशय निज खोली ॥
जो अंगदहि गरल तैं दैहै । चारि ग्राम हमसों तैं पैहै ॥
ग्राम लेभवश भगिनि विकारी । अंगदको विष देन विचारी ॥
गरल वालित रचि सकल रसोई । अंगद ढिग लैगै छल मोई ॥

दोहा—तब अंगद भगवानको, दीन्ह्यो भोग लगाय ॥

सँग भोजन हित भगिनिके, तनय लियो बोलवाय ॥ ४ ॥

भगिनि कह्यो सो आजु न ऐहे । काज विवश घरही महँ खैहै ॥

तब अंगद भनेजके नेहा । अश्रुपात सींच्यो सब देहा ॥
 तब भगिनी लखि अंगद प्रीती । धिकधिक कहनि जमानि अनीती ॥
 चली भगिनि लै थार उठाई । अंगद कह कत चली पराई ॥
 तब भगिनी सब कह्यो हवाला । जौन प्रबंधरच्यो महिपाला ॥
 तब अंगद भगिनी पर कोपी । हरिप्रसाद गुणि भोजन चोपी ॥
 प्रथमहि तू कत म्वहिं न बुझायो । विषयुत मैं हरि भोग लगायो ॥
 अबतौ तजौं न हरि परसादा । जात महाप्रसाद मर्यादा ॥
 अस कहि दै कोठरी केंवारा । विषयुत भोजन कियो अहारा ॥
 हरिप्रताप विष ताहि न लाग्यो । तनुते और रोगगण भाग्यो ॥
 भूपतिहूँ यह सुन्यो हवाला । तदपितज्यो नहिं कुमतिकराला ॥
 अंगद हरि विमुखी नृप जानी । पुरी गमनहित मतिहुलसानी ॥

दोहा—जगन्नाथ अर्पण हितै, लै हीरा निज पास ।

अंगद कियो पयान द्रुत, सुमिरत रमानिवास ॥ ५ ॥
 कोस द्वैक पुरते कटि गयऊ । यह सुधि भूपति पावत भयऊ ॥
 तब अंगद पर फौज पठाई । लावहु हीरा तुरत छड़ाई ॥
 अंगद करत रहैं हरि पूजा । गेन्यो फौज रह्यो नहिं दूजा ॥
 करे पुकारि सबै दलवारे । प्राण जात अब तुरत तिहारे ॥
 नातो हीरा देहु नरेशै । शिर काटन नृप दियो निदेशै ॥
 तब अंगद हीरा लै हाथा । बोले वचन सुनहु जगनाथा ॥
 यह हीरा हम तुमहिं चढ़ावैं । तुम्हरे निकट न आवन पावैं ॥
 अस कहि जय जगदीश उचारी । दियो फेंकि गंभीरहि वारी ॥
 सैनिक हीरा फेंकत देखे । अति अचरज मनमहँ सब लेखे ॥
 नृपहि जाय वृत्तांत सुनाये । राजहु तुरत दौरि तहँ आये ॥
 सर कटाय तहँ जाल फेंकाई । कंकर कंकर प्रति हेरवाई ॥
 हारि गयो हीरा नहिं पायो । तब अंगदको हरि स्वप्नायो ॥

जो अरप्यो मेरे हित प्यारे । सो हीरा हिय हार हमारे ॥

दोहा—आवहु नीलाचल तुरत, मोर दरश करि लेहु ॥

संत समाज विराजिकै, करहु अपूरुव नेहु ॥ ६ ॥

अंगद सुखित पुरी कहँ गयऊ । हरि हिय हीरा हेरत भयऊ ॥

मानि महामुद संतन जोरी । पूज्यो हुलसि बहोरि बहोरी ॥

भूप सलाह दीन सुनि सिगरो । मान्योसकल मोहिं सों विगरो ॥

पढ़ै पुरीमहँ विप्र समाजा । बोल्यो अंगद मानि स्वकाजा ॥

आगूचलि अंगद कहँ लयायो । निज अपराधहि क्षमा करायो ॥

आपहुलिय अंगद की रीती । कीन्ह्यो संत चरणमहँ प्रीती ॥

डौंढी पिटवायो निज देशा । सेवहि संत मनुष्य हमेशा ॥

रामभयी भै सिगरी राजू । भजन लगे सादर यदुराजू ॥

अंगदको निज भवन टिकायो । निज घर तासु अधीन करायो ॥

भूप विपुल मंदिर बनवायो । सदावर्त्त सब ठौर चलायो ॥

यह अंगद सत्संग प्रभाऊ । भयो अनन्य भक्त नृपराऊ ॥

नित प्रति संतन सेवन करहीं । संत चरण रज शीशहि धरहीं ॥

दोहा—पेखहु श्रोता सकल तुम, यह सत्संग प्रभाव ॥

अघी नृपति हरिजन भयो, लखि अंगदहि प्रभाव ॥ ७ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धपंचष

ष्ठितमोध्यायः ॥ ६५ ॥

अथ चतुर्भुजकी कथा ॥

दोहा—भूप करौलीको रह्यो, नाम चतुर्भुज दास ॥

श्रोता सुनहु सप्रेम अब, तासु विमल इतिहास ॥ १ ॥

तामें नाभाकी छप्पय ॥

भक्त आगमन सुनत जाय सन्मुख सो धाई ॥

सदन आनि सत्कारि सहश गोविंद बड़ाई ॥
 पादप्रक्षालन स्वहथ राय रानी मन सांचे ॥
 धूप दीप नैवेद्य बहुरि तिन आगे नाचे ॥
 यह रीति करौलीधीशकी, तन मन धन आगे धरै ॥
 चतुर्भुज नृपके भक्तकी कौन भूप सरवरि करै ॥ १ ॥
 दोहा—अपने पुरके चारि दिशि, योजन यक प्रयंत ॥
 बैठ रहैं जनजात पथ, बोलि लै आवैं संत ॥ २ ॥

राजा निज करसों पगधोई । करै संत सत्कार बड़ाई ॥
 संत जौन मांगै सो पावै । लहि सत्कार और थल जावै ॥
 दास चतुर्भुज सुयश महाई । रह्यो सकल भूमंडल छाई ॥
 सो यश सुनि जैपुरको राजा । कह्यो एक दिन मध्य समाजा ॥
 दासचतुर्भुज भक्त बड़ाई । देत अपात्र पात्र नाहि जोई ॥
 तब यक पंडित कह्यो वखानी । अबै न तेहि आशय तुम जानी ॥
 तब भांडहि पठयो नृपकेतू । रीति चतुर्भुज जानन हेतू ॥
 संतवेष धरि भांड सिधारे । सुनत चतुर्भुज वेगि हँकारे ॥
 पूछ्यो भूप जानि तिन संता । भांड वेष खुलिगयो तुरंता ॥
 लगे बजावन करि निज गाने । तिनको भांड चतुर्भुज जाने ॥
 संत वेष वश अति सन्मान्यो । दीन्ह्यो विपुल वित्त सन्मान्यो ॥
 रत्न जड़ित डब्बा यक दीन्ह्यो । तेहि अंतर कौड़ी यक कीन्ह्यो ॥
 दोहा—लै डब्बा कर भांड तब, जैपुर गये सिधारि ।

डब्बा नृप आगे धर्यो, भरम्यो भूप निहारि ॥ ३ ॥
 डब्बा युत रत्नन मुक्ताके । भीतर धरी काकनी ताके ॥
 सोइ पंडित बोल्यो अस बानी । आशय लेहु तासु अस जानी ॥
 रत्न जड़ित डब्बा जो दीन्ह्यो । संत वेष सत्कारहि कीन्ह्यो ॥
 जो वराटिका भीतर राख्यो । भांडन केरि पात्रता भाष्यो ॥

दास चतुर्भुजके मन आयो । सोउ परीक्षा हेत पठायो ॥
 जैपुर नृप सुनि पंडित वानी । कह्यो सत्य तुम कह्यो बखानी ॥
 आप करौलीको अब जाहू । सब वृत्तांत बूझि इत आहू ॥
 सुनि पंडित अति आनंद माना । कियो चतुर्भुज निकट पयाना ॥
 द्वार खड़ो जाहिर करवायो । राजा सादर ताहि बोलायो ॥
 पंडित तहां लखी यह रीती । बँधीरहै द्वै घटिका नीती ॥
 घटी बँधी यक रहै रामकी । तामें सुधि कोउ करन कामकी ॥
 घटी कामकी जब पुनि आवै । तामें सब निज काम चलावै ॥

दोहा—सुवा सारिका द्वै रहैं, ते बोलैं अस वानि ।

सो दोऊ दोहा इतै, मैं अब करहुँ बखानि ॥ २ ॥

राम कहे सबको भलो, और कहे दुख होय ।

दुर्लभ मानुष जन्मको, डारु वृथा कत खोय ॥ ३ ॥

सभा चतुर्भुज भूपकी, उठन लगै जेहि काल ।

तब दोऊ शुक सारिका, बोलैं वचन रसाल ॥ ४ ॥

जपौ रामको नाम नृप, वृथा जन्म नहि जाय ।

नारि नयन शर लागतै, ज्ञान विराग नशाय ॥ ५ ॥

यह चरित्र पंडित जब देख्यो । अचरज तासु रीति मन लेख्यो

विदा होन लाग्यो द्विजराई । मांग्यो नृप सों सुवा विदाई ॥

राजा सादर शुक दैडारचो । लै पंडित जैपुरहि सिधारचो ॥

दास चतुर्भुज की सब रीती । कीर कहै गो संयुत प्रीती ॥

सकल सभासद तौन सभामा । कहत रहे कोऊ नहि रामा ॥

कहैं परस्पर विषयी बाता । कोहुको नहि परलोक देखाता ॥

पंडित कह्यो सुमहु महाराजा । दास चतुर्भुज सुयश दराजा ॥

एक जीहसों कहि न सकतहों । धन्य धन्य तोहि जन्म भणतहों ॥

तब राजा अस वचन सुनायो । वरणो यथा देखि तुम आयो ॥

कह्यो विप्र पूंछ्यो शुक याहीं । राजा पूंछ्यो तेहिं क्षण माहीं ॥
वर्णहु कीर चतुर्भुज रीती । तब शुक बोल्यो जानि अनीती ॥

दोहा—धिक्र धिक्र है तेरी सभा, धिक्र धिक्र भूपति तोहिं ।

राम सुन्यो नाहिं काहु मुख, अचरज लाग्यो मोहिं ॥६॥

पुनि पंडित ते शुक कह्यो, मोहिं सभा ते टारु ।

तहां न मैं एक क्षण रहौं, जहां न राम उचारु ॥७॥

दरबारी यमदूत सब, राज सत्य यमराज ।

ऐसी पातकिनी सभा, कहा मोर इतकाज ॥ ८॥

ऐसे सुनिकै शुक वचन, खुलि गे हिये केंवार ।

भूप करन लाग्यो भजन, कीन्ह्यो भक्ति प्रचार ॥९॥

सहित समाज दराज सब, जैपुरको महाराज ।

गयो करौलीको तुरत, मिलन चतुर्भुज काज ॥१०॥

मिल्यो चतुर्भुजको हुलसि, लहि उपदेश अखंड ।

सोइ रीति वर्तत भयो, छूटि गयो यमदंड ॥ ११ ॥

सकल चतुर्भुजकी कथा, जो इत करों प्रचार ।

ग्रंथ रामरसिकावली, होय अमित विस्तार ॥ १२ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांक० उ० षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ पृथ्वीराजकी कथा ॥

दोहा—वरणों सहित उछाह मैं, पृथ्वीराज कछवाह ।

कीन्ह्यो विमल चरित्र जो, जैपुरको नरनाह ॥१॥

पयहारीको शिष्य सुजाना । भयो महाभागवत प्रधाना ॥

करै साधु सेवन प्रति रोजू । अनै भवन साधु करि खोजू ॥

करै प्रीति युत गुरुसेवकाई । यहि विधि वीत्यो काल महाई ॥

इक दिन कह्यो नृपति पयहारी । जानि द्वारका सुमति हमारी ॥

राजा कह्यो चलहु लै मोहीं । जो प्रभु होहु मोहिं पर छोहीं ॥
गुरु कह भली बात नृप भाषा । तोहिं लै चलन मोर अभिलाषा ॥
भई खबरि सब नगर मझारी । भूप जात द्वारका सिधारी ॥
तब मंत्री अतिशय दुख पायो । सपदि गुरुके निकट सिधायो ॥
विनती किय प्रभु भूपति काहीं । नहिं लेवाय जैये संगमाहीं ॥
जो राजा प्रभु तुव संग जैहै । साधुनको सेवन नहिं ह्वैहै ॥
अधम देश यह राक्षस केरो । संतसेव तुव रचित घनेरो ॥
ऐसी सुनि मंत्रीकी वानी । गुरु स्वीकार कियो विज्ञानी ॥

दोहा—पृथ्वीराजको बोलिकै, भाष्यो गुरु बुझाय ।

इतै द्वारिका सकल फल, पैहौ वसौ बनाय ॥ २ ॥

विमनस है गुरु शासन मानी । रह्यो भूप निज पुरी विज्ञानी ॥
एकसमय निज रानी संगी । सोवत रह्यो भूप रति रंगा ॥
देख्यो स्वप्न प्रत्यक्ष तहांहीं । गयो द्वारका नगरी मांहीं ॥
करि मज्जन गोमतिके कूला । लियो छाप नृप युगभुज मूला ॥
करि द्वारिकाधीशको दर्शन । आयो बहुरि पुरी नृप हर्षन ॥
जाग्यो नृप देख्यो सुख भूला । तनु मज्जित अंकितभुजमूला ॥
स्वप्न यथार्थ भयो नरेशै । गुरु गमनत जस दियो निदेशै ॥
संत महंत सबै जुरि आये । नृप चरित्र लखि अचरज गाये ॥
यहि विधि भयो प्रथै कछवाहा । गढ़ आमेर धनी नरनाहा ॥
वैद्यनाथको यक द्विज गयऊ । पूरुब कबहुं अंध सो भयऊ ॥
धरन कियो द्वारे व्रत साता । कह्यो स्वप्नमहँ हर यह वाता ॥
भाग्य विवशते नेत्र विहीना । मैं नहिं सकों चक्षु तोहिं दीना ॥

दोहा—शिव शासन सुनि विप्रसो, विलखान्यो नहिं मानि ।

नेत्र हेत शिव द्वारमें, पुनि बैठ्यो व्रत ठानि ॥ ३ ॥

सतयें व्रत शिव स्वप्नमें, भाष्यो द्विजहि बुझाय ।

तू आमेर धनी नृपति, पृथीराज पहुँ जाय ॥ ४ ॥
 पोंछित तासुशरीरको पटलै दृगन लगाउ ॥
 यदापि लिख्यो नहिं भागमें, तदापि नेत्र तैं पाउ ॥ ५ ॥
 शिव शासन सुनि विप्र सो, गढ़ आमेर सिधारि ॥
 पृथीराज तनुको सुपट, लियो आंखिनिज धारि ॥ ६ ॥
 रघ्यो जन्मको अंध द्विज, अंबक लह्यो विशाल ॥
 और चरित्र विचित्रहै, पृथ्वीराज भूपाल ॥ ७ ॥
 जब आमेर धनी नृपति, पृथ्वीराज कछवाह ॥
 त्याग्यो तब तनु भासअति, देख परचो नभ माह ॥ ८ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धसप्त
 षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अथ मधुकरशाहकी कथा ॥

दोहा—मधुकर शाह महीप यक, नगर ओडछेमाहिं ।

भयो संत सेवी विमल, कहौं चरित सब पाहिं ॥ १ ॥
 तासु नेम अस रघ्यो विशेषै । संत जाति महँ भेद न देखै ॥
 माला तिलक देखि सत्कारै । करि पूजन षोडशोपचारै ॥
 भवन मध्य भोजन करवाई । निज शिरमहँ चरणोदक नाई ॥
 भूपति मधुकरकी अस रीती । चलि आई बहुकाल सप्रीती ॥
 प्रगट्यो यश नृपको नवखंडा । भूप भागवत महाउदंडा ॥
 समय एक मिलि धूर्तन चारी । लेन परीक्षा करी तयारी ॥
 एक रोज बहु रजक बोलाई । साधु वेष तनु दियो बनाई ॥
 खरगर करि तुलसीकर माला । ऊर्ध्व पुंढ्र दियो भाल रसाला ॥
 यहि विधि रजकन स्वांग बनाई । दियो भूप दरबार पठाई ॥
 देखत भूप साधु मनमानी । आगे चलि अतिशय सन्मानी ॥

करि पूजन षोडशोपचारौ । धोयो निज कर खरपद चारौ ॥
 दोहा- पुनि भोजन करवाय बहु, करि अतिशय सत्कार ।
 जोरि पाणि बोल्यो वचन, धिक् धिक् भाग हमार ॥ २ ॥
 भूतलमें अबलौं मिले, द्वैपदेके बहु संत ।
 चारि चरणके आजुहीं, देख्यो संत लसंत ॥ ३ ॥
 धरणीपतिकी मति विमल, देखि पाय सत्संग ।
 तजे रजोगुण रजक सब, रंगे रामके रंग ॥ ४ ॥
 परि पुहुमीपतिके चरण, भवन भूति सब त्यागि ॥
 गही अनन्य उपासना, ज्ञाननिशामहँ जागि ॥ ५ ॥
 त्यागन लग्यो शरीर जब, मधुकर अति मतिधीर ।
 लखि संतनकी भीरसब, गगन प्रकाश गँभीर ॥ ६ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेअष्टषष्टितमोऽध्यायः६८।

अथ रामराजाकी कथा ॥

दोहा-दक्षिण दिशिके देशमें, रसिक शिरोमणि भूप ।
 भये रामराजा कहूं, तासु चरित्र अनूप ॥ १ ॥
 कवित्त-रसिक समाज जोरि रोजही विरचि रास, राम रसरंग
 रंगि राजा लखै रासको ॥ एक दिन रासहीमें राजा लख्यो राम-
 रूप, पर साकेतमें जो सोहै दिव्य भासको ॥ अर्पण विचारि अ-
 प्यौं आपनी सुकन्या काहिं, मान्यो नहिं प्रेम छाकि लोकलाज
 नाशको ॥ रघुराज संतन समाज जु रि राजसुता, दीन्होवास संप-
 तितदै ताहीके अवासको ॥ १ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अथ रामराजाकेराणीकी कथा ॥

दोहा—जासु रामराजा चरित, वरण्यो विराचि कवित्त ॥

कहाँ तासु रानी चरित, संत चरण रत चित्त ॥ १ ॥

कवित्त—सोई रामराजा एक समय मथुराको आय, संतन समा-
ज जोरि कीन्ह्यो सत्कार है। जौन द्रव्य लायो सो लगायो संत-
विप्रनमें, जैहै कैसे भौन अब कीन्ह्यो सो विचार है। पंचशत मो-
हरके चूड़ा खोलि रानी दियो ताही समै आये नाभा परम उदार
॥ चूड़ा तासु कर पहिरायकै निहारयो छवि, भूपजाय भौन
भेज्यो धन जो उदार है ॥ १ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे सप्तति-

तमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

अथ कूवाजीकी कथा ॥

दोहा—अब कूवाजी को कहौं, अति सुंदर इतिहास ।

जाहि सुनत सब संतजन, मानत हिये हुलास ॥ १ ॥

छंद—यक रह्यो कूवा नाम हरिजन जाति तासु कुम्हारकी ।

सो भयो भक्त प्रधान हैमति संतके सत्कारकी ॥

जो होय रूखो सूखघर सो संतजनन खवायकै ।

पुनि करै भोजन आप संतन चरण जल शिर नायकै १

यक दिवस घर कछु रह्यो नहिं तब गयो लेन उधार है ॥

यक वणिक बोल्यो कूप खनतौ पाउ वित्त अपार है ॥

सो मानि लाग्यो खनन कूपहि पाय धन घर लायकै ॥

सब साधुजनन खवाय मान्यो वृत्ति भली बनायकै ॥

कूप भयो गंभीर यक दिन, सकल मांटी धसि गई ॥

सब लोक जान्यो मरचो कूवा वणिककी निंदा भई ॥ २ ॥

षड् मास बीते जाय कोउ तहँ राम धुनि सुनि जकिरह्यौ
 पुनि आय पुरजन सो सकल जो सुन्यो कौतुक सोकह्यौ
 जन जाय सब खनि मृत्तिका कूवै लख्यो बैठो तहां ।
 तोहिं ऐंचिकै बाहरकियो माच्यो कोलाहल पुर महा३॥
 मुख राम धुनि लागी रही पूजाचढ़ी धन भूरिहै ।
 सो सकल धन दै घर गयो मुनि संत सेवा पूरिहै ।
 बहु भांति संत खवाय करि सतकार वस्यो निवासमें॥
 यक समैं आये संत कोउ राख्यो सप्रेम अवासमें ॥४॥
 यक संतके ढिग निरखि बालमुकुंद मूर्ति मनोहरी ।
 जो होत हमरेहु पूजते अभिलाष अस कूवा करी ॥
 जब संत लागे चलन बालकुकुंद लगे उठावने ।
 तब उठे बालमुकुंद नहिं संतहु लगे पछितावने ॥ ५॥
 कूवा कह्यो ये चहत मेरे घर रहन भगवानहैं ।
 जो कहौ महीं उठाय निज घर जाहुँतो परमानहै ।
 तब संतकह्यो उठायलीजै लियो कूवा दौरिकै ॥
 निज भवनमें पधराय पूज्यो सविधि चंदनखौरिकै॥६॥
 तब संत अमरष भरे वरवश लगे जाय उठावने ॥
 तिल भारि तज्यो नहिं भूमि बालमुकुंदपतितनपावने॥
 तब संत कूवै दियो ठाकुर आप मारगको लिये ॥
 कूवा हिये हर्षत दृगन वर्षत सालिल पूजन किये ॥७॥
 प्रभु नाम राख्योजान राम सु वारितन मन को दिये ॥
 यकसमैं चाह्यो द्वारकाको गमन अंकन मन किये ॥
 प्रभु कह्यो सपने सुनहु कूवा छाप शंखहु चक्रकी ॥
 इतहीं लहैगो अवशि कत सहु विथा मारगवक्रकी॥८॥
 पुनि गयो सपने द्वारका अंकित भयो हरि छापते ॥

सो प्रगट तन देखेपरे निरभै भयो यम तापते ॥
 पुनि एक दिन देख्यो सपन गोमतीसागर संगमै ॥
 कोऊ कृतघ्नी हाड़ डारचो टूटिगै धारा समै ॥ ९ ॥
 अपनी सुमिरनी डारिदीन्ह्यो तुरतही धारा बड़ी ॥
 लै अस्थि सकल कृतघ्नके तारत सुजलनिधि हैकड़ी ॥
 इत भोर मुद्रित अंग लखि आये सुसंत अपारहै ॥
 चारो वर्णभे शिष्य अगणित त्यागि दर्प विकारहै ॥ १० ॥
 इक दिवस कूवानारि भ्राता भवनमें आवत भयो ॥
 ताही दिवस द्वै संत आये तिय हिये अति सुख छयो ॥
 तिय भ्रात हित पायस रची दिय सूख संतन भोजनै ॥
 कूवा निहारि विचारि अनुचित किययतन असतेहिछिनै
 तियको पठायो भरन जल संतन खवायो खीरहै ॥
 तिय आयलखि विपिरीत दियनिजनाकअँगुलिसचरिहै
 कूवा गरेमेंराखि अँगुरी वचन कह्यो पुकारिहै ॥
 यमराज जब गल काटिहै नहिं भ्रात तोर निवारिहै ॥ १२ ॥
 पुनि जानि तियको संत विमुखी कियो त्याग तुरंतही ॥
 सो क्षुधावश चहुँदिशि फिरी तेहि दियो भोजन संतही ॥
 यहि भांति कूवाके चरित्र विचित्र कहैंलों गाइये ॥
 तजिकै कलेवर जाय कूवा कृष्णधाम सोहाइये ॥ १३ ॥
 इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेएकसप्त-
 तितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

अथ करमैतीकी कथा ॥

दोहा—करमैती बाई सुमति, तासु कथा विस्तार ॥
 मैं वरणौं सुनिये सकल, श्रोता संत उदार ॥ १ ॥

शेखावत राजा रह्यो, रह्यो पुरोहित तास ॥
 करमैती दुहिता रही, ताहीकी छविरास ॥ २ ॥
 जैपुरके सो राज्यमें, नाम खडैला ग्राम ॥
 उपरोहित दुहिता सहित, वस्यो तहां मतिधाम ॥ ३ ॥
 तासु पिता व्याही सुतै, आयो जब पति लैन ॥
 करमैती सोच्यो अतिहि, मिल्यो सकल चित चैन ॥ ४ ॥
 हाड़ चामको पति तजौं, होय मोर पति श्याम ॥
 उत्तरों भवनीरधि सहज, पूर होय मन काम ॥ ५ ॥

अस विचारि दुहिता अधरातै । त्यागि भवन भागी विलखातै ॥
 नगर बाहिरे जाय विचारा । जन खोजिहैं होत भिनसारा ॥
 केहि विधि बचों लोग नहिं पायें । भजौं अनन्य कंत गुनि श्यामैं ॥
 मृतक ऊंट यक परो निहारी । तासु उदर महँ छपी कुमारी ॥
 मृतक ऊंट दुर्गंध न मान्यो । जग दुर्गंध अधिक तेहि जान्यो ॥
 भोर भये जन खोजन धाये । कतहुं न लखे दुखी फिरिआये ॥
 कट्टी ऊंट तनते दिन तीजे । चली प्रयाग श्यामरंग भीजे ॥
 मज्जन करि तीरथपति माहीं । कछु दिन महँ पुनि गै ब्रजकाहीं ॥
 वृंदावन वंशीवट ठामा । भजनलगी निजपति गुनिश्यामा ॥
 पिता तबै दुहिता सुधि पाई । आयो वृंदावन हरषाई ॥
 कह्यो सुतापदमहँ शिर धारी । चलौ भवनकहँ आशु कुमारी ॥
 कटति नाक होतो अपवादा । राखु सकल कुलकी मरयादा ॥

दोहा—उत्तर दियो कुमारिका, सो कवित्त प्रियदास ॥

विरच्यो सो यहि ग्रंथमें, मैं इत करौं प्रकास ॥ ६ ॥

कवित्त—कही तुम कटी नाक कटै जोपै होय कहूं, नाकएक
 भक्त नाक लोक मैं न पाइये ॥ वरष पचासकलों विषैहिमें वास
 कियो तऊना उदास भये चबेको चबाइये ॥ देखै सब भोग मैंन

देखे एक देखे श्याम ताते तजि काम तन सेवामें लगाइये ॥
रातते ज्यों प्रात होत ऐसे तम जात भयो दयो लै सरूप प्रभु
गयो हिय आइये ॥ १ ॥

दोहा—काल सरिस जानहु पिता, अति कराल जगजाल ।

व्याल सरिस हालहि तजो, भजिये लाल गोपाल ॥७॥
अस भाख्यो करमैती बाई । पिता सुनत जकि रह्यो बनाई ॥
लागे वचन बाण सम हीमें । मान्यो अति गलानि निज जीमें ॥
त्यागि भवन तजि जगकी आसा ॥ कियो अचलतुलसी वनवासा ॥
शेखावत नृप यह सुधि पाई । मान्यो विप्र गयो बौराई ॥
व्रज यात्रा करिवेके हेतू । आयो व्रजहि बांधि घरनेतू ॥
करमैतीके निकट सिधारयो ॥ विविधि जतन करि वचन उचारयो ॥
जस पितुको दीन्ह्यो उपदेशा । तैसाहि दीन्ह्यो नृपहि निदेशा ॥
नृपहु तासु सत्संगति पाई । खुलिगे हिये कपाट बनाई ॥
लौटि आपने सदन सिधारा । ध्यावन लाग्यो नंदकुमारा ॥
फेरयो सिगरी राज्य निदेशा । करै भजन सब सरति रमेशा ॥
भजनानंद मँगन भूपाला । छूटि गई यमभीति कराला ॥
भे हरि भक्त प्रजा तेहि केरे । रहे न लेश कलेश घनेरे ॥

दोहा—करमैती बाई चरित, यहि विधि गुनहु अनंत ।

लिख्यो न इत विस्तार वश, क्षमिये आगस संत ॥८॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

द्वासप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

अथ उभय कुमारिनकी कथा ॥

दोहा—एक भूपकी कन्यका, जमींदारकी एक ।

उभै कुमारिनको चरित, वरणों सहित विवेक ॥ १ ॥

जमींदारकी एक कुमारी । भूपतिकी तिमि एक दुलारी ॥
 रहैं एक गुरुके शिषि दोई । वसैं भवनमें अति मुदमोई ॥
 जबहारिको गुरु पूजन करहीं । तब आपहु लखि अस उच्चरहीं ॥
 शालग्राम ह । कहैं देहू । हम पूजहिंगी सहित सनेहू ॥
 गुरु न देय तब दोउ अति रोवैं । ह्वै अति दीन गुरू मुख जोवैं ॥
 एक दिन पूजन हेत कुमारी । गुरुसों कियो उपद्रव भारी ॥
 तब गुरु लै द्वै पंथ पषाना । धरचो मध्य पूजन अविधाना ॥
 पूजि पषाणहि प्रभुके संग । सुता न जान्यो यह परसंगा ॥
 जब मांग्यो पुनि आय कुमारी । दुहुँन दियो अस वचन उचारी ॥
 ये ठाकुर शिलपिछे नामा । पूजहु तुम पूजी मन कामा ॥
 दोई दुहिता ठाकुर मानी । लै पषाण गमनी रतिसानी ॥
 निज निज घर लै पूजन करहीं । भोग लगाय अन्न मुख धरहीं ॥

दोहा—जिमींदारकी कन्यका, तासु रहे द्वै भाय ।

आपुसमें झगरो कियो, परचो डाकघर आय ॥ २ ॥
 लूटि लई संपति घर केरी । धरचो जाय निज भवन घनेरी ॥
 शिलपिछेहु गे साजुहि संग । तब कुमारिका करि सुख भंगा ॥
 कीन्ह्यो व्रत भाई समझायो । तदपि न याके मन कछु आयो ॥
 जब वोई ठाकुर हम पैहैं । भोजन पान तबै मुख दैहैं ॥
 भाई कह्यो जाहि लै आवै । तेरो ठाकुर कौन चोरावै ॥
 तब कन्या चलि हेरन लागी । मिले न ठाकुर अति दुख पागी ॥
 तब गोहरायो हे शिलपिछे । गये कहां तुम मोहिं न मिछे ॥
 आरत वचन सुनत भगवाना । शुद्धभाव कन्या कर जाना ॥
 भे पषाण ते प्रगट मुरारी । कूदिपरे तेहिं गोद कुमारी ॥
 शिलपिछे पषाण ते नाथा । प्रगटे मुरलि लकुट धरि हाथा ॥
 तुलसीदास कह्यो चौपाई । सो मैं कहत प्रसंगाहि पाई ॥

हरिव्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होत भगवाना ॥

दोहा—प्रगट पाय यदुनाथको, कन्या तजि संसार ।

रानी षोडश सह में, मिली जाय तोहि वार ॥३॥

भूपसुता शिलपिछे लक । पूजन लगी प्रेम अति कैकै ॥

बीत्यो कछुक काल सउछाहा । भूप सुताकर भयो विवाहा ॥

भूपसुता करभई विदाई । राजपुत्र लै चलयो लेवाई ॥

पंथमाहँ इक कूप निहारा । तहँ पालकी धराय कुमारा ॥

राजसुता सो प्रेमहिं सानी । राजपुत्र कह कोमल वानी ॥

में तुववश मिलिये मोहिं प्यारी । राजसुता तब गिरा उचारी ॥

हरि विमुखी तुम कंत हमारे । ताते छुओं न अंग तिहारे ॥

जो हरिदास होहु मम प्यारे । तौ हरिपूजहु सरिस हमारे ॥

अस कहि झपलैया देखरायो । शिलपिछेको दरश करायो ॥

सो जादू विचारि सुत भूपा । फेंकयो झपलैयाको कूपा ॥

तेहि क्षणते सो राजकुमारी । छोंड़िदियो भोजन अरु वारी ॥

गई ससुरगृह लंघन कीन्हें । सासु ताहि बोधन बहु दीन्हें ॥

दोहा—तदपि न भोजन वारि मुख, दीन्ह्यो राजकुमारि ॥

अति सोचत परिवार सब, गे तेहिं कूप सिधारि ॥४॥

राजसुता लखि दूरिते, तौन कूप दुख धारि ।

गोहरायो आरत वचन, शिलपिछे गिरिधारि ॥ ५ ॥

मिलहु मोहिं अब दौरिकै, दयासिंधु भगवान ।

तुव दरशन विन दासिका, तजन चहाति अब प्रान ॥

राजसुता आरत वचन, सुनतहि हरि अतुराय ।

निकसि कूपते गोदतेहिं, बैठिगये प्रभु आय ॥ ७ ॥

शिलपिछे पाषाणते, प्रगट्यो कमलाकंत ।

राजसुताके कंतभे, प्रेम विवश भगवंत ॥ ८ ॥

राजसुता श्रीरुक्मिणी, रमण पाय रमणीय ।

तजि संसार अपार दुख, लई मुक्ति कमनीय ॥ ९ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउ०त्रयः

सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

अथ एक राजकन्याकी कथा ॥

दोहा—एक राजकन्या चरित, अब वरणौ हरषाय ।

जो संतन विश्वासते, लीन्ह्यो पुत्र जिआय ॥ १ ॥

रही राजदुहिता जहँ व्याही । रहैं ते हरिविमुखी जन दाही ॥
 केहि विधि निबहै धर्म हमारा । राजसुता किय महाखँभारा ॥
 रहै पुत्र इक राजसुताके । दीन्ह्यो तेहि विष अति सुख छाके ॥
 जब मरिगयो नरेश कुमारा । पुरमहँ माच्यो हाहाकारा ॥
 दासीको तब तुरत पठाई । संत समाज खोजि सो आई ॥
 बंधुन कह्यो संतजन आनै । ते सब कहे संत नहि जानै ॥
 धौ औषधि धौ मंत्रहु संता । धौ अकाश धौ धरणि वसंता ॥
 तब दासी सँग बंधु पठाई । लीन्ह्यो संत समाज बोलाई ॥
 बंधो शिर भरि राजकुमारी । जोरि पाणि अस गिरा उचारी ॥
 जो मम सत्य संत विश्वासा । तौ यह पुत्र जिये अनयासा ॥
 अस कहि संतनको पग धोई । डारयो पुत्र वदन हरि जोई ॥
 सोवत इव सुत उठयो तुरंता । जयजयकार कियो सब संता ॥

दोहा—संतन पर विश्वास लखि, पुरजन युत सब देश ।

साधुनको पूजन लगे, कीन्ह्यो भक्ति रमेश ॥ २ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेचतुः

सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

अथ दयाबाईकी कथा ॥

दोहा—रही दयाबाई कोई, कृष्ण सनेही सत्य ।

तासु कथा वर्णन करौं, रँगे प्रेम चित नित्य ॥ १ ॥
 पति गमन्यो कहूँ तीरथ हेतू । नारि अकेले रही निकेतू ॥
 तीरथ करत करत पतिताको । आयो बहु दिनमें मथुराको ॥
 पुनि बलदेव दरशहित आयो । जेहिनिशि शयनकियो सुखछायो
 तेहि दिन ताके गृह अस भयऊ । ताके सदन संत कोउ गयऊ ॥
 माघ मास अति शीत दुखारी । कांपत तन सो परचो ओसारी ॥
 देखि दया बाई करि दाया । रज्जु डारि तेहिं उपर चढ़ाया ॥
 अग्नि तपाय वोढ़ाय रजाई । ऊपरते पुनि लियो दबाई ॥
 गई अटारी तब कोउ नारी । दशा देखि सो कह्यो पुकारी ॥
 मनुज दयाबाई सँग लीन्हें । सोवतिहै कुरीति अति कीन्हें ॥
 दौरि सबै दोहुन गहिलीन्हें । फेरि एक कोठरी महँ कीन्हें ॥
 वृद्ध कहे तब सबै विचारी । जब ऐहै यहि कंत सिधारी ॥
 यथायोग्य देहै तब दंडा । हम न लेव यह अयश अखंडा ॥

दोहा—अस कहि राख्यो दुहँनको, एक कोठरी डारि ॥

असमंजस मान्यो महा, टोलाके नर नारि ॥ २ ॥

जा निशि भयो हेवाल यह, ता निशि हलधर राय ॥

दियो स्वप्न तेहि कंतको, तू अब घरको जाय ॥ ३ ॥

संत वेष धरि हम गये, तुव गृहनीके गेह ॥

सो कीन्ह्यो सत्कार अति, नहीं हमारे नेह ॥ ४ ॥

असमंजसमाने महा, तोर सकल परिवार ॥

मोहिं और तुव नारिको, राख्यो धांधि अगार ॥ ५ ॥

भोर जानि सो भवनको, चल्यो तुरत अकुलाय ॥

भवन आय देखी दशा, सांचो सपन गनाय ॥ ६ ॥

पूजि दयाबाई चरण, सहित सकल परिवार ॥
 संतहुको कीन्हों विदा, करि अतिशय सत्कार ॥ ७ ॥
 इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे
 पंचसप्ततितमोध्यायः ॥ ७५ ॥

अथ गंगाबाईकी कथा ॥

दोहा—गंगाबाईकी कथा, अब वर्णौ चितलाय ॥

जाहि सुनत गुरुवचनमें, अति विश्वास दृढ़ाय ॥१॥
 गंगाबाई भै हरिदासी । हरिकी कथा माहँ विश्वासी ॥
 गुरुको परमेश्वर करि जानै । गुरुके वचन मृषा नहिँ मानै ॥
 एकसमय पति गयो लेवावन । सो गवनी समीप गुरुपावन ॥
 विदा होत गुरु दियो अशीशा । जिये कंत तुव असी वरीशा ॥
 चल्यो कंत लै गंगाबाई । मारग मध्य विपिन अधिकाई ॥
 तहँ ठग आइ लूटि धनलीन्ह्यो । ता पतिको विन प्राणहिँ कीन्ह्यो ॥
 तब अति विलखित गंगाबाई । रोवनलागी वचन सुनाई ॥
 पतिको मरण सोच नहिँ मोरे । जिये मरे जग मनुज करोरे ॥
 गुरु कह असी वरस पति जीहै । होत मृषा सो सोच अतीहै ॥
 नारायण तुम हौ केहिँ ठोरा । करहु सत्य गुरु कह्यो जो मोरा ॥
 जो गुरुवचन मोर विश्वासू । तौ जीहै पति यहि क्षण आसू ॥
 अबलौं नहिँ यदुनाथ लुकाना । करिहै मृषा न वेद प्रमाना ॥

दोहा—गंगाकी आरत गिरा, गुरुके वचन निहोर ॥

गज रक्षक रक्षक जनन, प्रगट्यो नंदकिशोर ॥ २ ॥

गंगाबाई कंतको, दियो जियाइ तुरंत ॥

अंतरहित हैजातभे, कमलाकर भगवंत ॥ ३ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

षट्सप्ततितमोध्यायः ॥ ७६ ॥

अथ एकरानीकी कथा ॥

दोहा—इक रानीको चरित अब, सुनिये श्रोता संत ॥

संतन हित जो सुत इन्यो, पुनि ज्यायो भगवंत ॥ १ ॥

एक भूप अति संतन सेवी । जानै और देव नहिं देवी ॥
आई इक दिन संत समाजा । राजा किय सत्कार दराजा ॥
कियो महंत संत सत्संगा । विचरत नित नव भक्ति प्रसंगा ॥
चलन चहै महंत जेहिं काला । तबहीं वारण करै भुवाला ॥
यहि विधि त्रिशत साठि दिन बीते । राजा नहिं सत्संगहि रीते ॥
तब महंत अतिशय अकुलाई । जान चह्यो तहँ ते वरिआई ॥
चलत महंत निराखि नरनाहा । अति विमनस इतभयो उछाहा ॥
निशा जाय अंतःपुर माहीं । सो वृत्तांत कह्यो तियपाहीं ॥
जो महंत रहिहैं इत नाहीं । तौ नहिं प्राण रहै तन माहीं ॥
सुनि पति वचन मानि दुख रानी । अस उपाइ संतन हित ठानी ॥
संत पयानहि काल विचारी । दै विष डारचो सुतकहँ मारी ॥
हाहाकार मच्यो चहुँ ओरा । भयो भोर संतन कह भोरा ॥

दोहा—लेन खबरि इक संतको, पठयो राज निवेश ॥

पुत्र मरण सुनि संत सब, आय गये तेहिं देश ॥ २ ॥

मरचो राजसुत गरलवश, जानि महंत तुरंत ।

पूछ्यो रानीसों सपदि, शपथ धरावत कंत ॥ ३ ॥

रानी कह तब गवन गुनि, जानि भूतको नाश ।

मैं मारचो सुत दै गरल, करै संत जेहिं वाश ॥ ४ ॥

सुनि महंत अचरज गुनत, जानि अलौकिक प्रीति ।

सुमिरचो श्रीयदुवंशमणि, वर्णत प्रभुकी रीति ॥ ५ ॥

सवैया—जो प्रभु भारत युद्ध महा तेहिके मधि टिहि भंडवचायो

जो प्रभु देवकी सोचहि जानि मरे षट्बाल तहाँ दरशायो ॥ जो गुरुको मृतपुत्र दियो हरि संत विनय सुनिकै सुख पायो ॥ सो विधिको अपमान विचारिकै संतही हस्तते बालक ज्यायो ॥ १ ॥

दोहा—यही कवित्त बनायकै, पढ़्यो महंत पुकारि ।

अंतहपुरहि तुरंतही, बालक उख्यो खँखारि ॥ ६ ॥

पुनि सब संतन बोलिकै, बोल्यो वचन महंत ।

हमतो इत रहिहैं सदा, जाहु चहो जहँ संत ॥ ७ ॥

नृपति भवन वसि संतपति, करि हरि भजन अपार ॥

पुरजन भूपति तिय सहित, किय वैकुण्ठ अगार ॥ ८ ॥

इति भक्तमालाश्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अथ हरिपालकी कथा ॥

दोहा—एक भक्त गाथा कहौं, नाम जासु हरिपाल ।

संत सेव लखि प्रगटभे, जाको श्रीनैदलाल ॥ १ ॥

इक हरिपाल विप्र कोउ रहेऊ । साधुन सेव धर्म हाठि गहेऊ ॥

जो कछु होय भवन सो लेवै । साधुनको खवाय नित देवै ॥

घरके तासु देखि अनरीती । कियो निनार त्यागि तेहिं प्रीती ॥

सो विभागमें जो धन पायो । कछु दिनमें सब संत खवायो ॥

रहि नहिं गयो भवनधन जबहीं । चोरी करनलग्यो पुनि तबहीं ॥

चोरी करिकै जो धन पावै । भवन बोलिकै संत खवावै ॥

भई बात जाहिर पुरमाहीं । चोरिहु किये मिलै धन नाहीं ॥

एक दिवस हरिपाल दुवारा । उतरी संत समाज हजार ॥

तिनहिं राखि चोरीहित धायो । मिल्यो न धन बहु घात लगायो ॥

तासु रहै इक वाणि कठोरी । माल तिलक लखि करै न चोरी ॥

मिल्यो न वित्त लौटि घर आयो।बाहिर भीतर बहुविधि धायो॥
मीजत हाथ बहुत पछिताता । छुट्यो नेम मम हाय विधाता ॥

दोहा—तब प्रभुको शंकटभयो, हँसे विकुंठ ठठाय ।

रमा मानि अचरज मनहिं, पूँछ्यो कछु मुसकाय ॥ २ ॥

नाथ कह्यो मम दासको, संत खवावन हेत ।

चोरिहु कीन्हे आजु तेहिं, लग्यो न संपति नेत ॥

चलन परचो हमको तहां, भूषण पहिरि अमोल ।

हमहुँ चलब प्रभु संतके, रमा कह्यो अस बोल ॥ ३ ॥

धरिकै साह स्वरूप प्रभु, भूषण पहिरि अनंत ।

दरवाजे हरिपालके, गये रमा भगवंत ॥ ४ ॥

बोले वचन पुकारिकै, विपिन जो देइ नवाय ।

द्वैसै मुद्रा ताहि हम, देहैं तुरत गहाय ॥ ५ ॥

जेवर पहिरे वणिक लखि,मानि मोद हरिपाल ।

कह्यो वचन पहुँचाइहैं, कानन महाकराल ॥ ६ ॥

अस कहि दम्पति वणिक लै, गवन्यो वनकी ओर ।

मध्य विपिन बोलतभयो, लैकर दंड कठोर ॥ ७ ॥

कवित्त—भूषण उतारिदीजै कह्यो हरि जानदीजै, जानतुम्हें

। बिना भूषण उतारेना ॥ भूषणहुँ लीजै नहिं जीव मोरलीजै

कछू, दयारस भीजै चित्त दयातो हमारेना ॥ भूषण उतारिलेहु

मुद्रिकाको छांड़ि देहु,बनिहै वणिक बिन मुद्रिका उतारेना॥प्रीति

को निहारे नहिं धीर उरधारे मिले, देवकी दुलारे तासु कर्मका

विचारेना ॥ १ ॥

सोरठा—प्रगट भये भगवान,बहु बखानि हरिपालको ।

दीन्ह्यो ज्ञान विज्ञान, अंत समय मिलिहौ हमैं ॥ १ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

अथ नंददासकी कथा ॥

दोहा—अब भाषहुँ श्रोता सुनहु, नंददास इतिहास ।

जाके हेतु जियाय दिय, वाछी रमानिवास ॥ १ ॥

नंददास इक भक्त अनूपा । भयो जासु यश जगमहँ जूपा ॥
हरिको भयो अनन्य उपासी । रह्यो जगत कर तनक न आसी ॥
रह्यो वरैली पुर तेहिं गेहा । नित नव नंद नंदनसों नेहा ॥
फैली सकल नगर प्रभुताई । पूजा देहिं मनुज सब आई ॥
रहेजे उपरोहित पुर माहीं । तिनको नीक लग्यो यह नाहीं ॥
सकल दुष्ट जुरि करी सलाहा । लगै कलंक ताहि जेहिं माहा ॥
यक निशि मृतक राखि यक वाछी । नंददास घरके कछु पाछी ॥
डारि सबै खल भवन सिधारे । लगे पुकारन जगि भिनसारे ॥
वाछी मिलै न आजु हमारी । कोउ कह नंद लकुटलै टारी ॥
असकहि नंददास घर नेरे । आय सबै वाछी मृत हेरे ॥
लागे कहन पुकारि पुकारी । नंददास वाछी निशि मारी ॥
नंददास लखि मृषा कलंका । यदुपति बल मानी नहिं शंका ॥

दोहा—वाछीके ठिग जायकै, बोल्यो वचन पुकारि ।

दयासिंधु यदुवीर प्रभु, राखहु लाज हमारि ॥ २ ॥

कवित्त—दुष्टन दुष्टता जानि लई, तब वच्छ समीपहि आतुर
आये ॥ ध्याय रमापति को उर अंतर, हाथ दै वाछरी वेगि जिआ
ये । देखो महामहिमा जनकी, विधि अंक ललाटके धोय बहाये ।
दासन रीति विचारि विरंचिहु मानहि खोइ तिन्हें शिरनाये ॥ १ ॥

दोहा—नंददासको चरित लखि, परे चरण शठ आय ।

नंददासकी रीति सब, सीखत भे हरिध्याय ॥ ३ ॥

गिरि गिरि माणिक होत नहिं, गज गज मुकुत न होय ।
वन वनमें चंदन नहीं, विरला साधू कोय ॥ ४ ॥

इति श्रीभक्तमालरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे एको

नाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अथ जगत्सिंहकी कथा ॥

दोहा—भूप करौलीको रह्यो, जगत्सिंह अस नाम ।

भयो संतसेवी विमल, कहौं चरित अभिराम ॥ १ ॥

छप्पय—श्रीयुत नृपमणिजगत्सिंह दृढ़भक्ति परायण ।

परम प्रीति किय सुवश शीश लक्ष्मीनारायण ।

रमा गोविंद स्वरूप भूप नालकी चढ़ावै ॥

नौबति नवल निसान सदल आगू चलवावै ।

भरि कनककलश निज शीशमें प्रेम नेम पूजन करै ॥

तन मन धन करि अर्पण हरिहि, आप विषय सुख नहिं भरै ॥ १ ॥

दोहा—जगत्सिंह यदुकुल नृपति, यदुकुल मणिको दास ।

ताकी कीरति चारि दिशि, कीन्ह्यो परम प्रकाश ॥ २ ॥

जगत्सिंह तस सुनि सुखदाई । जैपुरको जैसिंह सवाई ॥

बोल्ह्यो जैपुर दरशन हेतू । आयो जगत्सिंह मति सेतू ॥

सादर चलि करिकै अगुवाई । किय प्रणाम जैसिंह सवाई ॥

लायो अपने भवन मँझारा । कीन्ह्यो विविध भांति सत्कारा ॥

कह्यो तुमहिं कुलकमल दिनेशू । हम सब वृथा धर्म नहिं लेशू ॥

जगत्सिंह तब कह मुसकाई । तुव भगिनी जैसिंह सवाई ॥

दीप कुँवरिहै जाकर नामा । अहै अनन्य उपासिक रामा ॥

भक्ति प्रबल सद्गुण है मोसों । गुप्त भेद भाष्यो भल तोसों ॥

भक्तिमती भगिनी पहिंचानी । धन्य भाग्य जैसिंह निज मानी ॥

परे भगिनि चरणन महँ जाई । दियो हुकुम जैसिंहसवाई ॥

खर्चकरै साधुनमहँ जेतो । सचिव कोऊ वरजै नहिं तेतो ॥

जगत्सिंह पुनि माँगि विदाई । जैसिंहहि भल भक्ति बताई ॥

दोहा-आयो अपनेभवनमें, भक्ति अनोखी ठानि ।

तनु परिहरि रघुवर भवन, वसत भयो शुभखानि॥
इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखण्डेउत्तरार्द्धे

अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

अथ सदाव्रतीकी कथा ।

दोहा-सदाव्रती एक हरिभगत, कहों तासु इतिहास ।

श्रोता सुनहु सप्रीतिसों, दायक परमहुलास ॥ १ ॥
सदाव्रती नामक एक साधू । रह्यो अनन्य भक्त यदुनाहू ॥
विना हेतु अति संत सनेही । आत्म सम मानत सब देही ॥
रही नारि एक पुत्र सयानो । नित संतन सत्कारहि ठानो ॥
एक दिन कुटिल साधु एक आयो । अतिशय सादर सदन वसायो
साधु पुत्र अरु साधु सनेहू । भयो एक मन जिय द्वै देहू ॥
एक दिन साधुसुवन कहँ साधू । लै आयो जहँ नदी अगाधू ॥
करि छल साधुसुवन कहँ मारी । भूषण छीनि दियो दह डारी ॥
आयो भवन पिता जब पूछ्यो । कह्यो आजु गवन्यो तेहिं छूछ्यो
सदाव्रती भूपति पहुँ जाई । नृपसों कहि डौंड़ी पिटवाई ॥
तिसरे दिवस लोथि उतरानी । एक संन्यासी लखि पहिंचानी ॥
सदाव्रतीके निकट सिधारी । कह्यो कानमें वचन उचारी ॥
रहत जौन साधू तुव धामैं । सोई सुवन हत्यो सरितामैं ॥

दोहा-सदाव्रती तब चित्तमें, कीन्ह्यो विमल विचार ।

मरयो सुवन जीहै नहीं, होई साधु सँहार ॥ २ ॥

जो भूपति यह सुधि सुनि पैहै । अवशि साधुको जिय हतहैहै ॥
अस विचारि कह सुनु संन्यासी । तैहीं है मेरो सुतनासी ॥
लै शतमुद्रा जाहु पराई । जो अपनो जिय चाहो भाई ॥
संन्यासी शतमुद्रा लैकै । भाग्यो नगर छोड़ि भय भैकै ॥

साहु जारि सुत सरित नगीचू । कह्यो नृपहि मरिगो सुतमीचू ॥
 जान्यो साहु साधु सब जाना । दिन दिन लग्यो शरीर सुखाना ॥
 साधु शरीर सुखात विलोकी । सदाव्रती तियसों कह शोकी ॥
 केहिविधिसाधु भीतिअतिभागै । पुत्र वधेको दोष न लागै ॥
 बोली सदाव्रतीकी नारी । देहु साधुको व्याहि कुमारी ॥
 साधु सुनत परदक्षिण दीन्ह्यो । तियशासन शिरमें धरिलीन्ह्यो ॥
 तियको बारहि बार सराही । दीन्ह्यो सुता साधुको व्याही ॥
 कृष्णचरणमें अति रति जागी । यह दोहा रसना रट लागी ॥

दोहा—अवगुण ऊपर गुण करै, ऐसो भक्त जो कोय ।

ताकी पनही शिर धरों, जबभर जीवन होय ॥ ३ ॥

देखि साहुको अस उपकारा । रीझिगयो वसुदेव कुमारा ॥
 साहु गुरुको स्वप्न देखायो । जीहै साहु सुवन तुव ज्यायो ॥
 गुरु कह्यो जीहै सो नाही । तौ देहैं हत्या तोहि काहीं ॥
 प्रभु कह साहु सुवन हठि जीहै । करहु न संशय वचन सहीहै ॥
 गुरु उठि भोर साहु घर आयो । सदाव्रती चलि कै शिरनायो ॥
 गुरु पूंछ्यो सुत कहां तिहारा । साहु कह्यो अनित्य संसारा ॥
 मरिगो बीति गये षट मासा । जार्यों ताहि नदीके पासा ॥
 गुरु कह्यो हम देवजियाई । दहन भूमि मोहि देहु बताई ॥
 चिता भूमि चलि साहु बतायो । तहँ गुरु जाय कनात लगायो ॥
 फैली खवारि सकल पुरमाहीं । धाये मनुज विलोकन काहीं ॥
 अचरज लखन नरेशहु आयो । लखन मनुज वृंद तहँ ठायो ॥
 तब कनात भीतर गुरु जाई । चिता भूमि पट पीत ओढ़ाई ॥

दोहा—सुमिरयो श्रीयदुवंशमणि, जो शासन सति होय ॥

सदाव्रतीको सुत जिये, लखैं मनुज सबकोय ॥ ४ ॥

जियैं सुवन अबहीं इतै, नहिं देहों जिय तोहि ॥

लाखन जन आगे कढ़त, लज्ज्या लागति मोहिं ॥५॥
 इतना गुरुके कहतहीं, भयो विवर भूमाहिं ॥
 कह्यो समंगल साहु सुत, बैठिगयो गुरुपाहिं ॥ ६ ॥
 साहुसुवन गुरु गोदलै, दियो साहु कहँ जाय ॥
 भूपतियुत पुरजन सकल, अचरज गुने बनाय ॥ ७ ॥
 सदाव्रती सोइ साधुको, सौँप्यो सुतको जाय ॥
 कह्यो रावरेकी दया, पुत्र मिल्यो मोहिं आय ॥ ८ ॥
 इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे एकाशी
 तितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

अथ प्रेमनिधिवणिककी कथा ॥

दोहा—कथा प्रेमनिधि वणिककी, श्रोता सुनहु सुजान ॥

जाके करसों कृष्णप्रभु, करत भये जलपान ॥ १ ॥

नगर महा आगरा मँझारी । रह्यो प्रेमनिधि वणिक सुखारी ॥
 तहां यमन वस्ती बहुतेरी । बचै न परस उपाय वनेरी ॥
 वणिक प्रेमनिधि मनहिंविचारी । लावै निशि भरि यमुना वारी ॥
 द्वारबैठि हरिगाथा गावै । जे आवैं तिन श्रवण करावै ॥
 यदुपति छोंड़ि और नहिं जानै । यांचन हित नहिं करै पयानै ॥
 एक निशा वर्षाऋतुमाहीं । गये यमुनजल भरिबे काहीं ॥
 रह्यो पंथमहँ पंक महाना । यमुना मारग तिनहिं भुलाना ॥
 गिरहिं कीच महँ पुनि उठि गवनै । बनै न यमुन जात नहिं भवनै ॥
 निज सेवक अति दुखी निहारी । आये हरि मशाल कर धारी ॥
 तहँ ते यमुन दियो पहुँचाई । पुनि घरलों आये यदुराई ॥
 गुन्यो प्रेमनिधि कोउ सरदारा । लै मशाल गमनत दरबारा ॥
 यक दिन म्लेच्छ शाह पहुँ जाई । साधु वणिककी चुगली खाई ॥

दोहा—यक बनिया बदमाश अति, औरत देखन हेत ॥

करत बखान पुराण बहु, जन दौलत ठगि लेत ॥२॥
 बादशाह करि कोप कराला । पठयो तुरत द्वारके पाला ॥
 गहिकै वणिक कैद करि दीजै । नातिक हुकुम शंक नहिं कीजै ॥
 इतै प्रेमनिधि भोग लगाई । पान करायो नहिं यदुराई ॥
 इतनेमाहँ शाहके दूता । आये गहि गवने मजबूता ॥
 शाह समीप दियो पहुँचाई । बादशाह कहँ आंखिदेखाई ॥
 क्या बनियां तैं करत बयाना । औरत देखत ठानहि ठाना ॥
 अस कहि हजरत कैद करायो । तब प्रभुको संकट अति आयो ॥
 धरि खोदायको वपु यदुनाहा । जात भये सोवत जहँ शाहा ॥
 कियो शाहको चरण प्रहारा । कह्यो देहि मोहिं सलिल अहारा ॥
 शाह चौकि उठि बोल्यो वानी । हजरत तुम्हें देइको पानी ॥
 अस कहि शाह गयो पुनि सोई । प्रभु प्रहार किय अमरप मोई ॥
 कह्यो जासु कर मैं जल पाऊं । कीन्ह्यो कैद प्रेमनिधि नाऊं ॥

दोहा—यहि क्षण छोंडै प्रेमनिधि, तेहिं कर करिहौं पान ॥

नतौ बादशाही सकल, होई तुव हैरान ॥ ३ ॥

शाह तुरत उठि शीश उघारे । आयो आपहि कारागारे ॥
 तुरत प्रेमनिधि वणिक छोंड़ाई । सादर सपदि सदन पहुँचाई ॥
 बार बार चरणन शिरनाई । दीन्ह्यो संपति भवन भराई ॥
 जाय प्रेमनिधि निज प्रभुकाहीं । पान कराये जल सुखमाहीं ॥
 भई आगरा नगर विख्याती । पूजै ताहि सजाति विजाती ॥
 करहि प्रेमनिधि साधुन सेवा । राखहि नाहि जातिकर भेवा ॥
 लागै खर्च संत सत्कारा । देत साह सो खोलि भँडारा ॥
 यहि विधि बहुत काल लगि सोई । कियो संत सेवा बहुतोई ॥
 अंतकाल महँ त्यागि शरीरा । वस्यो जहाँ निवसत यदुवीरा ॥

सिखे जे वणिक प्रेमनिधि रीती । तिनहूँ कै भइ हरिपद प्रीती ॥
तेऊ संतसेव मन लाये । अंतकाल यदुपति पुर पाये ॥
पाय प्रेमनिधिको सत्संगा । शाहौ रँग्यो रामके रंगा ॥

दोहा—बादशाह सब देशमें, दीन्ह्यो हुकुम फिराय ॥

जो न करी हरि भक्ति जन, पैहै तौन सजाय ॥ ४ ॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे द्वय

शीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अथ रत्नावतीकी कथा ।

दोहा—रानी इक रत्नावती, सुनहु कथा यह तासु ॥

छप्पय नाभाकी प्रथम, तामें करहुँ प्रकासु ॥ १ ॥

छप्पय—कथा कीर्तन प्रीति भीर भक्तनकी भावै ॥

महामहोछौ मुदित नित्य नँदलाल लड़ावै ॥

मुकुंद चरण चितवन भक्ति महिमा धुजधारी ॥

पतिपर लोभ न कियो टेक अपनी नहिं टारी ॥

भलपन सबै विशेषहीं आमेर सदन सुनषाजिती ॥

पृथ्वीराज नृप कुलवधू भक्त भूप रत्नावती ॥ १ ॥

दोहा—जैपुरको नृप जैकरन, मानसिंह महाराज ॥

भ्राता माधौसिंह तेहिं, सब सुजान शिरताज ॥ २ ॥

ताकी रानी नामकी, रत्नावती प्रसिद्ध ॥

पासमान ताकी रही, गही भक्ति तजि सिद्ध ॥ ३ ॥

श्वास श्वास हरिनामको, निशिदिन करै उचार ॥

कृष्ण नाम मुख लेतही, बहै नयन जलधार ॥ ४ ॥

एक दिवश रत्नावती, बोली ताहि बोलाय ॥

भक्ति भेद कछु मोहुँको, दीजै सखी बताय ॥ ५ ॥

पासमान बोली वचन, करहु रजायसु भोग ।